

श्रीमद् राजचन्द्र जमशनाज़्दी ग्रथमाला
प्रकाशन-छटा

श्रीमद् राजचन्द्र
—वचनानृत—

कर विचार तो पाम
हिंदी-संस्करण

भाग १ २

“बग़तम मान न होता तो यहाँ ही मोल होता !”

प्रकाशक

त्रिकमलाल महामुखराम शाह-प्रमुख,
श्रीमद् राजचंद्र कमरवादी मठल
श्री राजचंद्र पाठशाला, पंचमावली पोरा,
जमनावादी-१

पत्तधारीरे विद्यना तो एक धर्म है,
उसम येन करक आत्मा विस्मरण क्यों करे ?
श्रीपत्त राजचंद्र

मूल्य - ०-६० पै

१ २०२३
प्रति ५०००
प्रथमवृत्ति

मुद्रक
सुगिरी विन्ध्य,
हपद म देगाइ
दरबार गोपापास राट, धनादरा

जिस ज्ञानसे कामका नाश हो,
उस ज्ञानको अथवा मनिषे नमस्कार हा ।

*

जिज्ञासा हृदय शुद्ध, सतक्या बजायी गया
राह पर चल्ता ह, उसको धन्य ह ।

*

दुःखका कारण एक मात्र विषम-धर्मा है ।
जगर आत्मा सम है तो सब सुख ही है ।

श्रीमद् राजचंद्र

श्रीमद् राजचंद्र हस्ताक्षर

२३ मई १९५६ ई १९५७ २९२ अंग्रेजी सुभद्रा
६१५ इतिहास इतिहास ३२ दिनांक १९५६

शुद्ध, बुद्ध, चैतन्यधन,
स्वयं-योजित सुखधाम
और वहाँ मैं कितना ?
कर विचार तो पाम ॥

आमिद्विशास्त्र गा ११७

आमिद्विशास्त्र गा ११७
११७ गा ११७ गा ११७

आमिद्विशास्त्री भावना करने करते
पौत्र संबलमान प्राप्त करता है ।



श्रीमद् रानचड
वय ग्वा

श्रीमद् राजचन्द्र जन्मशताब्दी मण्डल

समीपवर्ती सहजशान वैराग्यमूर्ति श्रीमद् राजचन्द्रजीका जन्मशताब्दी निक्रम सन् २०२८ क कार्तिक सुती १७ क दिन आ रही है उनके उपरक्षयमें उस पुण्यनाम पुरुषक उपकारकी यन्त्रिचिन् पुत्रि स्मृतिके लिए इस 'श्रीमद् राजचन्द्र जन्मशताब्दी मण्डल की स्थापना हु है ।

श्रीमद् राजचन्द्रका जगत्-त्रिकारी परम कल्याणमय साहित्य, उनर जीवनके प्रमग इत्यादि विविध भाषाश्रमि प्रकाशित करनेका और विशाल जनसमुदाय इसका लाभ पा सके इस तरह उसका प्रचार करनेका इसका उद्श्य रखा है ।

उक्त एकत्र अनुसार मण्डकी रजोम्गी हा चुकी है । नियमपूरक व्यवस्थाके लिए ग्यारह समाखीकी एक 'व्यवस्थापक समिति' और प्रकाशनकायके लिए पाँच सदस्याकी एक प्रकाशन समिति काम कर रही है ।

अथवा जगुगार शुभ किये हुए प्रशासन कार्यका यह 'कर विचार तां पाम' हिन्दी-संस्करण छटा पुस्तक है। अथ पुस्तकका काम भी खलू है।

विशेष ध्यान ता यह है कि श्रीमन् के प्रति मनि रगोवाता प्रशासन अनुभव और आमदनी मन्त्रिम र्गानि ध्यान गरवाने इय काम उल्लासपूर्वक सहयोग रहे है और यही मय मन्त्री कावकण है।

श्रीमन्के प्रति भगामत्तिकान् सभी मा बहनमि इय काम सहयोग दाकी नम्र माना है।

भीमदू रावचन्द्र पाठशाण	आमदू रावचन्द्र जमशता २। मन्त्र
पचमादनी पाठ,	कारोवारा समिति
अहमदाबाद	निकमण महामुगाराम शाह, प्रमुख

श्री विनोदजीका पत्र—

विनोद-विनाय

जयशंकरपुर

३०-१-६६

श्री सीमाशंकर,

श्रीमद् राजचंद्र जयशंकरजी प्रकाशन समितिकी तरफसे “ कर विचार ता पाम ” और “ राजपत्र ” ये दो किताबें आपने प्रेमपूर्वक मेरी उसके लिए भी आपका आभार हैं। “ राजपत्र ” में से दो पत्र “ बहुत पुराने करा पुजधी ” और “ जपूज अक्सर एना क्यारे आगश ”—य ता मुने कथम्थ ही थे।

श्री राजचंद्र जी भी लिखते थे, स्थानुभरकी कसौती पर कस कर लिखते थे। उनकी प्रतिभा पारमार्थिक विषयोंमें अकुटित थी। और अक्ष कि उन्होंने दावा किया है, वे स्वयं पापाउ रहित थे। उनके समझ लेखनका एक बृहत् भ्रममें सप्रह किया हुआ मुझे पत्रको मिला था जिसमें क्षम क्रमानुसार सारा लक्षण पश किया था। उसीमेंसे “ कर विचार ता पाम ” ये अमृतदहन दोहन किये हुए हैं। मुझे उसके बहुत तृप्ति हुई। यह किताब गुजराती पत्रोंवाले हुनेक साधकके हाथमें बहुचनी चाहिए। और इसका तरजुमा अन्य भाषाओंमें भी होना चाहिये।

विनोदका जय जगन्

हिन्दी-संस्करण

अगव आनाम्य मना जय
जो जा बा, उय याग्य मना जय,
पराये दोष न देखे जायें
अपने गुणांनी उच्छृय्का सहन की जय,
—तमी इस संसारम रहना उचित ह
अथवा नहीं ।

श्रीमद् राजचन्द्र—

“ नि सदेह शानांतर हैं और व्यवहारम रहत
हुए भी बीतराग हूँ ” एसे श्रीमद् राजचन्द्ररचित साहि
त्यमसे चुने हुए इन त्रिचार-रत्नाका इस हिन्दी संस्करण
मकत करते हुए आनंद होता है ।

हरणक मनुष्य इस संसारम दुःखी है । वह जन्म,
मरण तथा राग, चिन्ता, व्याकुलता आदि दुःख धारण्यार

पाता रहता है इसमें बचानेवाला मात्र आत्मज्ञ ही है। यह आत्मज्ञान ही तभी प्राप्त करता है जब वह आत्मत्व प्राप्त पुरुषक सत्त्वमागममे और उनके उपदेशानुसार, उन्होंने स्वानुभवसिद्ध वा माग प्रकाशित किया है उसकी आराधना करता है, यह महात्माआत्मा प्रकृत निश्चय है।

श्रीमद् राजवद्रक अनन्य उपारक तथा उनके साहित्यक तथा रूप अनुमकी श्री लघुराज स्वामीक परिचयम बरसों रहकर श्रीमद्जीक साहित्यकी उपासना करनेवाले श्री गुणुमद्रजी पंडितने यह अनुवाक तैयार किया है। पंडितजीकी मानुभाषा हिन्दी है और उनका जैन साहित्यका अध्ययन मा अच्छा है इस मुमेलसे अनुवाकको मूलसे अनुमप करनेका भरसक प्रयत्न किया गया है, और नदियाद निवासी श्री नारणभाद पटेलने इस अनुवादका गधुनिक हिन्दी भाषाका रूप देकर इस श्रीमस्वी गौर प्रेरणाभक्त बनानेका प्रयत्न किया है।

श्रीमद्जीका साहित्य अतरामलकी, गभीर और

व्यक्तार्थां ह्येतान् अनुवाकं यत्प्रत्ययं तद्व्य करणेन
 प्रयत्नं क्रिया गता है फिर मा इयम रही है प्रुक्ति
 प्रयत्नना प्रारम्भान् अनुवाचं वरना है ।

“ अथवा नामनिर्धारण हे विद्युती एव प्रत्ययान्ते
 ही नाम्ना या प्रत्ययान्ते अवश्यं वरा याच है, यारु
 प्रारम्भान् याच है ।” श्रीमद्का यह वचनागुण निय
 स्मरणम रहकर और मन्त्रान् वनकर हमार प्रारम्भान्
 विशुद्ध करो ।

ता २६- -३७
 दादिया बाजार,
 बड़ीश ।

श्री १५ राववद्र शर्मा । मडल,
 प्रकाशान् प्रुक्ति,
 शामराज प्रुक्तिनाल शाह, प्रत्य ।

गुजराती द्वितीय संस्करणका प्रस्ताविका

सिद्ध विद्याः अमममगुण प्रकृति न ह्या,
।।वेक प्राप्त न ह्या, मनाधि न ह्य,
उग विद्याम मन नैदम। आभट्ट रचना वाग्म नहं रे।
धीमद् राचनट्ट

कुछ ही मासमें प्रथम संस्करणकी ३००० कारिया
पूरी हा जान म इसका पुनर्भरण प्रायकी समय रचामे
सुझे ह्य होता ह ।

इय संस्करणम परिपूर्ति प् ।।सोवतीहा पर रिया
जा रहा है उनर उद्गर धीमद् र वाग्मकी उपाशाक
पुरपाथम अति प्रक है ।

धीमद्दे मेग उनरे आताआरमानुभवमेगे मरि
हाम, श्रडाधमूद् हृदयमवनथ आ नम्य होने पर
राधकक। आभट्टिगुडिद सुमम परिट्ट हुगम ल्याोशल
मगम प्रस्थान करालाल मरि हाम ।

पटकीका हा वचासि रघाम्ना हा प्राप्त हागा ही परतु ज्या ज्या उनी ग्हराश्म उठेगि त्या त्या इसकी वृद्धि हागा और आननुभवप्रमाणे फ्रयत्र हाने पर टटप करंग ।

इस साहित्यके साधकाका अनुभव यह है कि इसका अध्ययन ज्या ज्यो करता जाता है त्या त्याो वह निच नूतन प्ररणाका प्ररक मन्त्रा जाता है ।

अम्बरचनोका यह दोहन श्रीमद्क साहित्यके अध्ययनमें अधिकधिक प्रेरक बने यही अभ्यथना ।

दाडिया बाजार, श्रीमद् राजचट्र जन्मशताब्दी मन्त्र,
 बडौण-२ प्ररमाण समिति,
 ता १ -१०-१९६६ गामागचट्र जुनीलाल आह, अरप्यग

प्रस्तावना प्रथम यात्रादि

शुक्ल अन्तःकरणके बिना
कौन मेरे कथनका पाय करेगा ?

जिसे निरादिन आत्माका उपयोग है जिसका कथन अनुसरमें आता है अन्तरंग में कोद स्पृहा नहीं है ऐसी जिसकी शुद्ध याचरणा है उसे सन्तमूर्ति श्रीमद् राजवद्रके आत्मन्ती विचारोंसे समृद्ध विपुल साहित्यमें से विविध विषयोंको स्पष्ट करनेवाले कितने ही बचनोंका छाँटकर इस पुस्तक में यथास्थान दिया गया है ।

सामान्य प्रकारसे प्रत्येक बचन एक सम्पूर्ण विचारकी प्रेरणा करे, ऐसा लक्ष्य रखा गया है । किसी भी पृष्ठ के खोला पर उस पृष्ठ परके किसी भी एक बचनको पढ़कर यदि हम शान्तिसे विचार करेंगे तो श्रीमद्के आराममें झोतप्रोत आत्मानुभवकी ज्योतिका दिव्य प्रकाश

हम लगाने अन्तरगत प्रकाशित करेगा और अज्ञानजय
हमारा दुनिषाको दूर कर अननय निमल आम-विचारकी
आर ल जायगा ।

इस विषये आक दुगकी देखकर महापुरुषाने
दुन्य निष्कारण कर्णसे द्रवित हुए हैं । यह कर्ण
हम जैसे दुगियाका दुग दूर करनेमें परम समथ कारण
है । इस जगतक परिचयम शत-अज्ञान भावसे जिन
विचारकी परपराम हुए भक्तन हैं और जगतक पदाथ,
प्रमग और परिचयका हम वा मुख्य आकते हैं, उद्यस
मान दुगकी ही वृद्धि दुर्न है-हाती ह भविष्यमें भी होगी ।

राम, देव और अज्ञानकी निरितिमे प्रगष्टि आत्मिक
सुखम निरन्तर सुखी महापुरुषाकी दृष्टि न इस जगतने
पगथाका जो मूल्याकन है, वही सत्य सुगका धनु है,
यह बात समग न आती है, गौर सची मूल्याकन दृष्टि
प्राप्त हाती है एसी प्रनल्ला नीमदूक वचनांग सवन
अनुभव न आयगी ।

भीमद् कहते हैं कि —

परमानन्दरूप हरिका एक क्षण भी विस्मरण न हा, यह हनाग उन वृत्ति, वृत्ति और लेम्का एव है ।

विचारधानका यह कथन प्रतीतिर हागा, और इन बचनाही विचारधेणी परमानन्दरूप हरिका निरंतर स्मरण कराकर परमानन्दमय करगी ।

इस पुरुरका नाम 'वर विचार ता पाम' यह भीमद्का ही बचन है । अनुपम अमकिडि गान्त्री इनही वृत्ति म ९७ त से ११८ वें म माक्षर उरयका त्रेणीका धनन करने हुए ११५ वं वाह में कहा है कि "हम जा कुल्य कहना या कह िया अब ता त् विचारगा ता पात्त करेगा ऐया कह कर ११८ वें वाह म सहस्र स्वरूपम्य हो जाते हैं ।

इस प्रकार मोक्ष-मार्ग में विचारका ही मुख्य स्थान है । भीमद्ने जा विचारका इतना महत्व दिया है, यह

विचार कैसा और क्या इसे जाननेके लिए इनके थोड़ेसे बचनों पर दृष्टिपात करना योग्य है।

१ जिस वाचनसे, समझसे तथा विचारसे आत्मा विभावसे, विभावके कार्यासे और विभावके परिरामोमे विरक्त न हुआ, विभावका त्यागी न हुआ, विभावक कार्योंका और विभावके फलका त्यागी न हुआ, वह वाचन, वह विचार और वह समझ सब अज्ञान ही है।

विचारत्रुतिक साथ साथ त्यागत्रुत्ति उत्पन्न करनेवाला विचार ही सफल है। ज्ञानीर कहनका यह परमाथ है।

२ आत्मभ्रान्ति सम रोग नहीं, सद्गुरु वैद्य मुञ्चाय, गुरु आशा सम पथ्य नहीं, औषध विचार ध्यान।

आत्मसिद्धि दो १२९

आत्माको अपने स्वरूपका मान नहीं इसके समान दूसरा कोई भी रोग नहीं सद्गुरुके समान उसका कोई सच्चा अथवा निपुण वैद्य नहीं, सद्गुरुकी आज्ञानुसार चलनेके समान दूसरा कोई पथ्य नहीं तथा विचार

र निष्यत्सन्ने रुन्न उष्णी दूरा कार औरधि-
मु है।

या प्राग् सुविचारणा, त्या प्राग् निश्चिन,
ज रुन्न क्षय माह र्थे, वाम पद निवार्य

अनसिद्धि दा ४१

वहा सुविचार दूरा प्राग् हो, वहा आत्मज्ञान
पान होगा है, और उन ज्ञान से आत्म मोहना ह्यकर
वेवापनको पाग है।

एक मात्र वहां आत्म-विचार और आत्मज्ञानका
मदुन होता है, वहा समस्त प्रकारका आशाकी समाधि
(शान्ति) होकर जीव स्वल्प से जिया जाता है।

आत्मकी भवादिवाल अज्ञान-भ्रातिसे मुक्त होकर
आत्मज्ञानको प्राप्त हो, आत्मभाव में स्थिर हो, ऐसी जो
विकल्पना है वही सुविचार और करने योग्य है।

“आनन्दो ज्ञान प्राप्ति हु, यह तो नि सशय है”

इस प्रकारके वचनसि जिसने अपनी अन्तर्गत दशाका बणन किया है और जिनके वचनोंका यह समूह है, ऐसे श्रीमद् राजचन्द्रजीवन और जीवन प्रसंगोंका जानने और समझाके लिए "जीवनकला" और "जीवनयात्रा" ये दो पुस्तकें उपलब्ध हैं और हालमें "जीवन-साधना" प्रकाशित हो रही है— (भूमिकाके समय 'जीवन-यात्रा' उप रहा भी परन्तु अब प्रकाशित हो चुकी है) वह पढ़न और विचारने योग्य है।

एसे आत्मानुमरी पुरुषके वचनमें बहते हुए आम लक्ष्मी सुखिनार प्रसाह में पावन होकर अनन्त दुःखमें सुख हानिके लक्षण इनके मागम भावपूर्णक प्रवृत्ति करे यही साधना है।

“जहा सर्वोत्कृष्ट शुद्धि वहा सत्कर्म सिद्धि”

दाशिया बाजार,
बनौली न १
१-११-१९६

श्रीमद् राजचन्द्र जन्मशताब्दी मन्ल
प्रकाशन समितिकी ओरसे
शामशावद सुनीलाल शाह, प्रमुख

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३	९	मुय	मुय
१४	७	दुय	दुय
१७	४	पाया	पायी
१९	७	कमो	कमो
२६	८	रखो	रखा
२८	२	रख, क्या कि	रख, क्याकि
३३	३	सत्पुरुषकी	सत्पुरुषकी
७०	६	दु ख	दु ख
७१	३	वसिष्ठ	वसिष्ठ
७७	१०	निवृत्त	निवृत्त
७९	११	रखते	रखते
"	"	लाकधम	लोकधम
८४	७	सहन	सहना
"	१२	दु खको	दु खको
९२	८	लाककी	लोककी

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
९४	२	लातिक	लौकिक
१०५	४	जाय	जायें
११७	१	चरणाम	चरणामें
११९	९	जाना	शानी
१३३	३	दीखता	दीखना
१४४	३	उपाहित	उपाहित
१४	४-७	ग्रहण हँ	ग्रहण है
१५३	४	लकण्डि	लोकण्डि
१७०	२	गाना	शानी
१७३	१	मूर्ति	मूर्ति
१७४	१	नहा	नहा
१७८	१	लातिक	लौकिक

श्रीमद् राजचन्द्र

—वचनमृत—

कर विचार तो पाम

भाग १

शुद्ध, बुद्ध, चैत यजन, स्वयं याति सुखधाम,
कीनु कहीए कग्लु ? कर विचार तो पाम

शुद्ध, बुद्ध, चैत यजन, स्वयं याति सुखधाम,
और कहें मैं कितना ? कर विचार तो पा ॥

कर विचार तो पाम

२

अपूर्व अक्षर एवा क्यारे आवश !
क्यारे धईशु बाह्यान्तर निर्धैय जो !
सम समधनु बधन ती श छेदीन,
विचरतुं कव महत् पुराने पय जो
अपूर्व०

ऐसा अपूर्व (अनाया) अक्षर कव आएगा !
बाहर और भीतर कव निर्धैय बनंग !
सब प्रकार के संधर्षा क बधन का सपूर्ण छेद कर,
महापुरुष के मार्ग पर कव चलंगे ! (निचरंग)

तू चाहे किसी घम का मानता हा मुझे इसका पक्षपात नहीं ।

कहती का तात्पर्य केवल यह है कि
 भिष राहसे संसारभेद का नाश हा,
 उस मनि, उस घम और उस सदाचार का तू
 भेवन करना ।

*

सदाचार पवित्रता का मूल है ।

*

विदगी अल्प है, और जजाल ज़ाबी ।

जजाल का धम कर ती, सुख के रूपम विदगी
 छवी लागी ।

नू किसी भी व्यापार का करनेवाला हो, पर
आजीविका के लिए अन्यायपूर्ण द्रव्य उपार्जन करना

*

वस्तुनिष्ठ मूल केवल विरागमें है। अतः जजाल
माहिनाके आत्र भयन्तर-माहिनी न बढ़ाना।

*

यदि सुशोचक काम का प्रारम्भ करना ही है वा
आत्र विलम्ब करने का दिन नहीं है, कारण,
आत्र के वैशा मगन्कारी दिन और कोई नहीं है।

पानहार का नियम रखना और पुरखत के समय में
संसार-निवृत्ति योजना ।

*

सत्पुरुष विदुर के कह अनुसार आज ऐसा कृत्य कर,
कि बिश्वमे उल्लसो सुखी नींद सो सके ।

*

कर्म कर्म-पर पाप है,
दृष्टिमें बहर है,
और मौव विर सवार है,
यह साच कर आजका दिन आगम कर ।

कर निवार ता पाम

यदि आज दहाडे सोनेका दिल हो तो उस समय
"वर-मक्ति-परायण बन जाना या सशस्त्रका सेवन
कर लेना ।

मैं समझता हूँ ऐसा होना कठिन है फिर भी
अभ्यास सबका उपाय है ।

*

पगलपगल बेर आज निर्मूल किया जाय तो उत्तम
नहीं तो उससे सावधान रहना ।

*

नया बेर भी मोल न लेना कारण यह कि बेर
र क किस काल तक सुग्न भागना है ।—एसा
वशानी सावत है ।

जिस घरमें आजका दिन बिना क्लेशके, स्वच्छतासे, शुचितासे, सुमेल और सनापसे, सौम्यतासे, स्नेह, सम्यता और सुप्तसे बीतेगा, उस घरमें पवित्रताका निवास है ।

*

तू मने अपनी आजीविकाकर प्राप्त करता हा, परन्तु वह उपाधिरहित है, ता उस उपाधिमय राजमुक्तकी इच्छा करके तू अपना आजका दिन अपवित्र न कर ।

*

परिग्रहकी मूर्च्छा पापका मूल है ।

सरलता धर्मका बीजस्वरूप है।
प्रसूक्त सरलताको संकलन किया जाय तो
आत्मका दिन सर्वोत्तम है।

*

आहार करना तो उस पुद्गलके समूहका पक्षरूप
मानकर करना परन्तु उसमें लुब्ध न होना।

*

वेत्नीय कमका लक्ष्य हुआ ही ता उसे पूज्यमस्वरूप
मानकर धराना नहीं।

मन्त्र ही बचन है,
बचन ही दुःख है।

•

पुण्य की हानिदि पर मन्त्रि या पुण्य न
हाना।

•

कम आडोका नारा है—शुभचिन्ता।

कर विचार लो वाम

१०

बांधीवाला को नहीं है, अपनी भूलमें पड़ता है।

*

एक को उपयोगमें लाश्राग लो शत्रु सब दूर हो जायेंगे।

*

म कहांसे आया ?
म कहां जाऊंगा ?
क्या मुझे बंधन है ?
क्या करनेसे बंधन छूटे ?
कैसे छूटा जाय ?

—इन वाक्योंको स्मृतिमें रखना।

द्रव्य-कर्मो चुकायीं विन्ता रमते ही उमदी
अपेक्षा मात्र-कर्मो चुकानेकी विधि लट्करा। -

*

सुख-दुःख ये दोनों मनका कल्पनाएँ हैं।

*

क्षमा ही मोक्ष का मन्त्र है।

*

नीति के नियमों को द्वारा नदी।

*

राजार में रहते हुए, और उसे नीतिपूर्वक मारते
हुए भी विदेही दशा रमा।

दुःखनशा करके यदल हाना ही हाना है, ऐसा मानना ।

*

सशर की अनिश्चता में सज्जनता ही निवृत्तकर्म है ।

*

नीति क मग म सज्जनता समुत्तार माग्दशक है ।

*

५^१ नीति है—यदी समस्त आनन्द का कलेवर है ।

आत्मा को स्वयं रग चढ़ाये वही सत्संग ।
 मोक्ष का मार्ग बताव वही भैरी ।

*

समरबमावी न मिलन को जानी एकान्त कहत ई

*

गुणी के गुण में अनुरक्त बनो ।

कर विचार तो पाम

१२

चञ्चल वित्त ही सब विपम दुःखों की जड़ है ।

*

यह तो अर्थ-सिद्धान्त मानना कि सयोग, वियोग, सुख दुःख, स्नेह, आनन्द अनुराग, अनुराग, इत्यादि योग किमी व्यवस्थित कारण से हात है ।

*

विष कृत्य का परिणाम दुःख है, उसे सुमानने से पहले मूर्ख सावो ।

आचरणम बालक कनो,
 सत्यमे युवान कनो,
 शनमे वृद्ध मा।

*

मनको वश किया दग्ने अगदकी वश किया।

*

देव-देवियोंकी प्रसन्नताको क्या करेंगे ?
 अगदकी प्रसन्नताको क्या करेंगे ?
 प्रसन्नता सत्पुरुषकी चाहो।

कर विचार तो साम

३६

सपुत्रपके अत करणने विगका आचरण किया या
बोध लिया वही धम ।

*

विचनी अन्तरग मोहमयी कूट गइ, वइ परमाणा है ।

*

सम्यग्नेत्र पाकर
तुम चाहे विच धमशास्त्रका विचार करो ता भी
आत्महितनी प्राप्ति हागी ।

अग्रतम मान न होय या द^० हा न^० हया ।

•

शस्त्रीलोग कहते हैं, सर्वज्ञ का ही सया
आहार-व्याप है ।

•

जिसने सभस्य अग्रतम द्विप होनेकी-दृष्टि पाया
 नहीं, वह सद्गुरु बनने-प्राय्य नही है ।

'धम' यह मस्तु बहुत गुन रही हुई है।

वह बाध सशोधनसे नहीं मिलेगी।

अपूरु अतर मगोधनसे वह प्राप्त होती है।

वह अतर मगोधन किसी महाभाग्यशालीको सद्गुरु के अनुग्रहमे प्राप्त होता है।

*

राग के बिना सुखर नहीं
और सुखर के बिना राग नहीं।

*

'स्यात्प' से यह बात भी माय है कि

जो होनेगला है वह बनलनेगला नहीं

और जो बनलनेवाग है वह होनेगला नहीं।

तो फिर धर्म के प्रयत्न में, आत्महित में अन्य
दशाधि के अधीन होकर प्रमाद क्या कारण करे ?

एक मंत्र के अल्प-मुग्ध के लिए अनंत मंत्र का अनंत दुःख न बढ़ाने का प्रयत्न सत्पुण्य करते हैं ।

*

ओ सत्वर प्रवृत्ति इह लोक में मुख का कारण तथा परलोक में मुख का कारण धर्म उम का नाम यज्ञद्वार प्रदि है ।

*

सत्पुण्यों का महान शोध है कि

उन्मत्त म आये हुए कर्मों का भोगने हुए नये कर्मों का सधन न हो इस के लिए प्राप्ति को सचेत रखना ।

शाम्भुमें मार्ग बताया है, मम नहीं।
मम वा सपुरुषने अन्तरात्मानम-रहा है।

*

परमात्माका ध्यान करनेस परमात्मा बनते हैं।

*

परन्तु वह ध्यान आत्मा सपुरुषके चरणकमलकी
नियोजना किं चिन्ना वा नहीं सकता।

दूसरा कुठ भी मत पाज ।

कबल एक सत्पुरुषका खोज कर, उसने चरणकमलम
सय भाज अरण करके आचरण किये जा ।

फिर भी यदि मोक्ष न मिले तो मुझसे लेना ।

सत्पुरुष वही है जिसे निशानि आत्मोपयोग रहता है
शास्त्रम नहीं है और सुननेमें भी नहीं आया है,
फिर भी अनुभवगम्य है एसा जिसका कथन है
अतगमे सृहा नहीं है ऐसी जिस की गुप्त आचरणा है ।

देहमें विचार करनेवाला बैग है
 वह क्या देहसे भिन्न है ? यह सुखी है या दुःखी ?
 इसका स्मरण कर।

*

पूर्वकर्म नडा है, ऐसा मानकर प्रत्येक घम का सेवन
 करते चलो।

एसा करते हुए भी पूर्वकर्म सिध्द होने का शक
 न करना।

*

शुभाशुभ कर्म का उदय होने पर हय या शोक
 नियो किना उन्हें भुगतो से ही छुटकारा है और यह वस्तु
 मरा नहीं है ऐसा मान कर समझान की अणा बढ़ाने रहा।

आत्मा का पहचानना ही ता श्रम है ~~दुःख~~ ~~दुःख~~ ~~दुःख~~
 पशुमनु क त्यागी बनो ।

*

प्रशस्त पुष्प की मति कुरो,
 उस का स्मरण करो,
 गुणचिन्तन करो ।

*

ना अमरी पौष्टिक ~~दुःख~~ ~~दुःख~~ ~~दुःख~~ ~~दुःख~~
 तुच्छ ही है ।

अब तक आत्मा आममवस अयस यानी
 देहमारमे प्रवृत्ति करेगा,
 मैं करता हूँ ऐसी बुद्धि करेगा,
 मैं सिद्धि आदिमे महान हूँ एम सुनेगा,
 शास्त्रकी जाल उमान मना,
 ममव लिप मिष्या भाइ करेगा,
 तब तक उसको शान्ति हाना दुःख है ।

इतने काल तक जो कुछ किया उस सबसे निवृत्त
 हाओ, और उसे करते हुआ थब रनो । (निर्णय) ।

*

किसी एक सत्पुरुषकी गोज करो और ननने
 चाहे कैसे बचनोमें थदा रनो । (आस्था) ।

*

हे कम, मैं तुझे निश्चयपूर्वक आशा करता हँ कि
 मेरे पैर नीति और नेही न टुकरायँ ।

संसृगके श्रमावमें चड़ी हु आत्म-धेणी प्राय- पवित
होती है ।

*

किसीने जी दोष न देल ।

जो कुछ होता है, तेरे अपने दोषसे हात्रा है,
ऐसा मान ।

*

तू आत्म-मरुसा न करना, अगर करेगा तो तू ही
तुच्छ है, ऐसा र्म मानता हूँ ।

किसी भी तरह सद्गुरु की श्रद्धा करना ।

उन्हें पाकर उनके प्रति तन, मन, वचन और आत्मासे श्रद्धा बुद्धि करना ।

उहींकी आज्ञाका सर्व प्रकारसे, नि शक हो कर श्रद्धा करना,

और तभी सब प्रकारकी मायिक वासनाका श्रमण होगा ऐसा समझो ।

*

मोक्षका मार्ग बाहर नहीं, परन्तु आत्मामें है । मार्ग पाया है वही मार्ग प्राप्त करायेंगा ।

लीला का नाम सुन लिया,
 लाल सुन सुनने लिये,
 लाल का नाम सुनने लिये,
 लाल का सुनने लाल सुनने लिये ।

•

लाल सुनने लाल सुनने लिये, लाल सुनने लिये
 लाल ।

•

लाल सुनने लाल सुनने लिये, लाल सुनने लिये
 लाल लाल लाल सुनने लाल सुनने लिये ।

अनंतकालसे अपनेको अपने स्वरूपकी भ्रान्ति रह गई है, यह एक अवाच्य अद्भुत विचारणाका स्थान है।

*

निरन्तर उदासीनताका प्रमाणा सचन करना
 सत्पुरुषकी मक्तिम लीन होना,
 सत्पुरुषके चरित्रका स्मरण करना
 सत्पुरुषके लक्षणका चिन्तन करना,
 सत्पुरुषकी मुग्धाहृदिका हृदयसे अश्लोकन करना

उनके मन, बचन, कायाकी हर एक चेष्टाके अद्भुत
 रहस्याका बार बार निम्निध्यासन करना

और उनका सम्मत किया हुआ सर्व सम्मत करना।

The above figures show, that, the
 total of the 172 cases of the 1st and 2nd
 years is 172 cases of the 1st and 2nd
 years.

*

172 cases of the 1st and 2nd years

172 cases of the 1st and 2nd years

172 cases of the 1st and 2nd years

*

The above figures show, that, the
 total of the 172 cases of the 1st and 2nd
 years is 172 cases of the 1st and 2nd
 years.

जीव अपनी कल्पनाएं बल्क पर किसी तरह भी
सत्का प्राप्त नहीं कर सकता।

सनीयनमूर्ति प्राप्त होने पर ही सत् प्राप्त होता है।

सत् समक्षमें आता है।

सत्का माग प्राप्त होता है।

और सत् पर लभ आता है।

सनीयनमूर्तिके लभके बिना जो कुछ भी किया

जाता है, वह जीवको बंधन है,

यह हमारा हृदय है।

शानकी प्राप्ति शानीसे ही होनी चाहिए ।

*

जीव अपने आपको भूल गया है और इसीसे उसका सन्मुखसे वियोग हुआ है ऐसा सब धर्मोंमें माना है ।

*

जीव अनन्त काल तक अपने स्वच्छदस चल कर परिभ्रम करे तो भी वह अपने आपसे शान नहीं पा सकता ।

परन्तु शानीकी आशाका आराधक अतर्मुहूर्तमें भी केवल शान पा सकता है ।

कमसे, भ्रान्तिमे या मायासे छूटना ही मोक्ष है
यही मोक्षकी शास्त्रिक व्याख्या है।

*

ज्ञानी पुरुष और परमात्मामें अन्तर नहीं है। जो
कोई अन्तर मानता है उसे मायाकी प्राप्ति होना परम
विक्रम है।

*

‘परमात्मा ही देहधारीरूपमें प्रकट हुआ है,’ ऐसी
झुंझि शानी पुरुषने प्रति उत्पन्न-ज्ञाने पर जीवको-भक्ति
रक्षण

ईश्वरेच्छाके अनुसार जो हो उसे हाने देना, यह भक्तिमानके लिए सुखदायक है।

*

परमानन्दरूप हरिको एक क्षणके लिए भी न भूलना, यह हमारी सय कृति, शक्ति और प्रेमका हेतु है।

*

जिसे (लगन) लगी है, उसीको लगी है, और उसीने उसको ज्ञाना है वही " पी पी " पुकारता है।

उसके ही चरणसगमे लगती है और जब लगती है। सभी छुटकारा होता है।

इसने मिवाय और काइ मगम ने

प्रत्यक्ष योग होने पर बिना समझाये भी स्वरूप स्थिति हानी सम्भवित मानना हूँ ।

और इससे यही निश्चय होता है कि उस ज्ञानका और प्रत्यक्ष चिन्तनका फल मोक्ष होता है क्योंकि मूर्तिमान मो र वह संपुरण ही है ।

*

प्रायः जीव जिस परिचयमें रहता है । उस परिचयरूप अपनेको मानता है ।

इसका प्रत्यक्ष अनुभव भी है कि अनाय कुलमें परिचय रगने वाला जीव, अपनेको हन्तापूर्वक अनायरूप मानता है और आपत्त्वमें भति नहीं करता ।

चीन्को सबसग ही मोक्ष का परम साधन है ।

समग जंसा अथ हितकारी साधन हमो इस
जगतमें न देखा है न सुना है ।

*

मक्ति पूणता पाणे योग्य तभी होती है कि जब
हरिसे एक तृष्णी भी याचा नहीं कट सब दशामें
मक्तिमय ही रहना ।

*

व्यवस्थित मन यह सब शुभिका कारण है ।

१

प्रसन्न योग हान पर बिना का
विधिति हानी समन्वित माला हैं ।

और इससे सही निष्पत्ति हास्य है कि
और प्रसन्न चिन्तन पल सा हास्य है
मृत्तिका में उ बृहत्सुन्दर ही है ।

*

प्रसन्न जीव तिस परिवार में रहता है । उस परि
अपने माता है ।

इसका प्रसन्न अनुभव भी है कि अन्तर्गत
परिवार रहनेवाला जीव, अपने ही हस्तापूर्वक अन्तर्गत
मान्य है और आत्मत्वमें मति नहीं करता ।

१.

महात्मा जिसने हृदय निभय हाता है, उसकी
मोहासक्ति दूर होकर, पनाथका निगम होता है,

इससे चाकुल्ला मिट जाती है ।

इससे नि शकता आती है ।

इससे नीच सब प्रकारके दुःखसे निभय होता है

और उसीसे नि समता पैदा होती है

और ऐसा योग्य है ।

'मुमुक्षु' यही है कि सब प्रकारकी मोक्षशक्तिमें
घबराकर एक मात्र मोक्ष लिये यत्न करना।

और 'तीव्र मुमुक्षु' यह है कि अनन्य वेग
मोक्ष मार्गमें प्रविष्टान् प्रार्थि करना।

*

मुमुक्षु नैव महामुक्ता परम लोके है।

*

संपुण्यमें ही परमभर-बुद्धि, इसे जानियाने परम
धर्म कहा है।

और यह बुद्धि परम देयत्व युक्ति करती है।

इससे सब प्राणियोंमें अपना राज्य माना जाता है,

और परम योग्यताकी प्राप्ति होती है।

ऐसा एक ही पदार्थ परिचय करने योग्य है कि
 जिसके अन्दर प्रकारका पारिचय निवृत्त होता है।

वह पदार्थ कौन था ?

और किस प्रकारसे ?

इसका मुमुक्षुलोग विचार करते हैं।

*

जगत्में अच्छा गिनान लिए मुमुक्षु जीव काऽ
प्रवृत्ति न कर, परन्तु आ अच्छा है उन्नीका आरण कर।

*

शास्त्र आदि ज्ञानसे अंत नहीं आता, परन्तु
 अनुभवज्ञानसे अव आता है।

शिव रत्नमन्त्र (अपनी अनभंगी भूलष) दोखित है
निर उषक शोषी आर देगना यह अजुम्माका
त्यग करा जेका हाण है ।



सब शक्तिमान हरिका इच्छा सदैव मुगलप ही
होती है और जिस पुरुषने भक्तिने कुण्ड भी अश प्राप्त
किये है उसे तो यही निश्चय करना चाहिये कि "हरिकी
इच्छा सदैव मुगलप ही होती है ।"

श्रमणी इच्छासे किया हुआ दाप जीवको तीव्रतासे भोगना पड़ता है इस लिए किसी भी सुग-प्रसंगम स्वच्छासे अशुभ भावसे प्रवृत्ति न करनी पड़ ऐसा करना।

*

जिसरे लिए आचन्यान करना पड़ता है वहाँसे या लो मन हटा लेना या वह कृत्य कर डालना। इस तरह उससे निरक्त हुआ जायगा।

*

यदि उदयको अन्ध परिणामसे मांगा जाय तो ही उत्तम है।

मानानही समान किंवा किना इस काममें जीवना
दहाभिमान टलना समकित नहीं है।

*

विवर करके वस्तुको बारम्बार समझा ।
मनसे किये हुए निधयको साक्षात् निधय न मनना ।
शनी द्वारा किये हुए निधयको जानार प्रकृति
करनमें कल्याण है ।

जिंदगी अल्प है और बड़ा धन
 संग्रहात धन है और तुम्हारा इच्छा
 वहाँ स्वल्पस्थिति का सम्बन्ध है,
 परन्तु वहाँ बजाल नही है
 और जिंदगी अप्रमत्त है
 तथा तुम्हारा अल्प है या नही,
 और संसिद्धि है,
 वहाँ स्वल्पस्थिति पूरा होता है-

साधारण उपाधि हम भी कुछ कम नहीं है
 तबार्प उसमें निजपना नहीं रहनेक कारण
 उससे धबराहट नहा उत्पन्न हाती ।

*

ज्यो ज्यो आरम और परिग्रहका मोह मिटता
 जाता है,

ज्यो ज्यो उनमेंसे निजपनेका अमिमान मद्
 परिणामको पाता है,

त्या त्यां सुमुह्यता क्वी जाती है ।

अनुरागलसे जिधका पारचय है एगा यह अग्निनन्द
 मय एकदमसे निवृत्त नहीं हो बला । इस गिप छ,
 मन, धन आदि को कुछ 'अपनापन' से रहे हैं, वह
 कथ नहींने अस्तु किया जाता है ।

ज्ञानी प्राय उन्हें कुछ ग्रहण नहीं करते, परन्तु
 उनमेंसे 'अपनापन' मिटाके स्वदेश करने हैं । ईश्वर
 करन योग्य भी यही है कि आत्मतत्त्वज्ञान के द्वारा
 प्रभु पर सब ध्यानसमर्पण कर अपना करने हुए गता ।

तब मुमुक्षुता निगल होती है ।

भान्तिने कारण सुवरूप लगनेवाले इन सवारी प्रसगा और प्रफारों में जब तक पीवकी प्रम रहा करता है तब तक जीवका निज स्वरूपका शान होना असमर है और सत्ताग का महात्म्य भी यथावश्यकरूपसे भास्यमान होना असभव है ।

जब तक यह सवारगत प्रेम असवारगत प्रममें पल्ट न जाय तब तक अप्रमत्ततासे बार-बार पुनरावृत्त करना अवश्य ही स्वीकार्य है ।

जो कम उपाजिष्ठ नहीं किम वे मोगने नहीं पडते ।

ऐसा समझकर दूसरे किसीने प्रति दोष-दृष्टि करनेकी शक्तिको जैसे बने वैसे शान्त करने समतुल्ये आचरण करना योग्य लगता है और यही जीविका कर्तव्य है ।

*

सांसारिक उपाधिमा जो कुठ भी होता हो, होने देना, यही कर्तव्य है ।

धीरजपुत्रक उन्मत्तका येन करना योग्य है ।

*

महात्माकी देह दो कारणसि निद्रस्थान है-प्रारब्ध कमकी भोगनेके लिए, और जीविके कल्याणके लिए तथापि इन दानामें वे उरास मारते, उदय आयी हुई वर्तना अनुसार चलते हैं ।

लगतके अमिप्रायको देख कर जीवने पदाथका बोध पाया है, जानीक अमिप्रायका देख कर बोध नहीं पाया। जिस जीवने जानीक अमिप्रायसे बोध पाया है उस जीवको सम्यग्दर्शन द्वाारा है।

*

किसी भी तरह पहले तो जीवको अपनी अहता दूर करना योग्य है।

देहाभिमान जिसका गलित हुआ है उसे सब कुछ सुगम्य ही है।

जिसे भेद नहीं, उसे भेदका शभव नहीं।

हरि-इच्छाके प्रति विनाश इद एव कर बरतने हो, यह भी सापथ सुगम्य है।

दिव नोप-बीरही उगति हागी है, उमे स्वप्न-
 मुग्धे वृग गृहि रहगी है, और तिनयोटे नो
 अन्नपन्न-दरा रहगी है।

विद्यु अन्नमं अदिबग है उम अन्नमों अदिषो।
 नियता गन्त भी है यह एक अनन्त भी अन्त है।

*

दिवे लषा अन्नमन्न हो अन्त है, उमे 'मि अन्न
 अन्नम अन्तों है' ऐका अन्न अन्न हो कर अन्न अन्न
 अदि विन्न्य हागी है।

अनतकाल व्यवहार करनेम विताया है, फिर उसकी बबालम परमाथका निखनन न हा इस तरह ही चन्ना, एका जिसका निश्चय है उसको वैसा होता है, एका हम जानते हैं ।

*

शानी अपना उपजीवन, आजीविका मी पूव कुमके अनुसार करता है, जिसे ज्ञानम मतिबद्धता आये इस तरहकी आजीविका न करता है, न करनेका प्रसंग चाहता है ।

*

शानीके प्रति जिहें केवच निम्प्रह भक्ति है, अपनी इच्छा उसमे पूरी नहीं हाती यह देन्वत हुए भी जिनके दिल में दार नहीं आता, ऐसे जीवाकी आसक्ति, शानीक आशय में धीरजपूर्वक रहते हुए, या तो नष्ट होनी है या अति मंद हा जाती है ।

विश्वी मं, धर्म का कपो न छाँड़, फिर भी
 लाठीक द्वारा गभारिह पनही हपतु काना पात्र नहीं।

*

उपय धाम हुए कटलपक। का कगतन। धन
 करना पात्र है, विान परिणत। धन करना पात्र नहीं।

*

दुग्धी निरुधि उप न्य कहते हैं।

मगर दुग्धी निरुधि दु म जिसे देन दात हैं
 ऐसे राम, देप, छानन आदि दोषांही निरुधिके मित, होना
 समर नहीं है।

उन राम आदिही निरुधि एक धामगानद विज
 दूधरे निछी प्रहारमे र भूखानम हुए है, र बंभन
 काल में हीवी है, र मरियकाल में ही म्भेरी।

हे राम ! जिस अक्षर पर जो प्राप्त हो जय, उसी से सतुष्ट रहोगे, यह सत्पुरुषोंका कहा हुआ सनातन धर्म है—ऐसा भविष्य कहते थे ।

*

जिस जिस प्रकारसे आत्मा आत्मभावको प्राप्त करे, वे सब प्रकार धर्मके हैं ।

आत्मा जिस प्रकारसे अचभावको प्राप्त करे, वह प्रकार अचरूप है, धर्मरूप नहीं ।

*

जीवने निरद धर्म, अपनी क्यनामे या कल्पना-प्राप्त अथ पुरुषसे, धरण करने, मनन करने या आराधना करने योग्य नहीं है ।

केवल जिसकी आत्मस्थिति है ऐसे सत्पुरुषसे ही आत्मा या आत्मधर्म अत्रण करने योग्य है, यावत् आराधने योग्य है ।

सुखी वैसा बना लूँ। जो यो यो कहकर सुखी
 नहीं है, और जो भोगोंमें निरंतर सुख सुख पर
 निर्भरगी इच्छा करता वह सुखी-सा प्रसिद्धि मिलने
 तक सुखी, नहीं भयभीत है।

•

शिक्षा प्रसिद्धि का अर्थशास्त्री यो यो विचार
 का फलक कि सुखी-सा मत ही सुख, सुख
 सुख ही है तो यो यो सुख-सुख सुखी हैं-उत्सोही
 मने।

•

साठ-तीस इस काल में सुख ही या सुख ही
 ही परन्तु सुखी-सा यो यो सुखी सुखी सुख
 सुख ही सुख ही सुख ही, सुखी सुख
 सुख ही।

हे परम कृपालु देव ! मैं, तू, यह सब सब
 तुमको चय करनेवाय एक ही आकाश में,
 आप भीमदने अनंत ब्रह्म का रूप बन, तू
 अनंत उपकारका प्रयुक्त कर = तू प्रकृत तू
 और आप भीमान् कुछ ही के लिए प्रकृत तू
 इस लिए मैं मूल, कवन और तू प्रकृत तू
 आपने चरणारविदायें नखर तू हैं। प्रकृति परम
 मनि और वीतराग प्रकृत तू प्रकृत तू
 हृदयमें मखरप्रद प्रकृत तू प्रकृत तू
 करता हैं, यह सफल प्रकृत। प्रकृति मखना

ॐ शान्ति शान्ति शान्ति ॥

सुन्दर फलों के बगैरे बरफ हमारे अनुभव हुआ करता है बरफ उग साफके (बर्फ) बिना बरफ, वह स्वयं कर्म वाप्य है उग इदानी साक्षात् प्रय हुआ है।

उस संसारमें जब जब बहुत ही बुराई का प्रसू हो है, उस समय जैसी वह वहन अद्विष्ट नगण है और बरफें बरफ्य छाए है कि ज्ञान साधनही पुनः गूना बढ़ती है।

परमात्मा भीष्टाके बरफके सुन्दर सुन्दर नैश्या के सब प्रयोग सुन ली सुन्दर सुन्दर प्रयोग के कारण ज्ञानसाधन

बड़ा कोर टाय नहीं, वहाँ मेद करना योग्य नहीं है।

इश्वरेच्छाक अनुसार जो हाता है उसमें समझा रखना ही योग्य है। और उसके उत्सवका यदि कोई विचार सूत्र पद तो उसे किये जाना, कवर यही हमारा टाय है।

*

एक बार एक निनकके दो दुफने कर 'सकलकी क्रिया-प्रतिष्ठा भी उत्सव होगा, तब तो इश्वरेच्छा होगी वही होगा।

*

किये हुए काम बिना मोने निरव होते नहीं, और नहीं निय हुए किसी कामका फल प्राप्त होता नहीं।

रण हुआ कुछ रहना नहीं करे। पड़ा हुआ कुछ
 मूला नहीं इन प्रकार वर ५ विवर कर विरुद्ध के
 प्रति दीनज मित्रन व विरुद्ध दिव्यक धार्य नहीं।

मन्त्रात्मे दीनमन्त्र तदा जना वरिष्ठ।



परमार्थ-मन्त्र, लक्षण यह है कि ज्ञानार्थका लेखन
 करो हुए जीव, मुगमें वा दुगमें स्व ज्ञाने कवर
 हुआ करे।

दुग्म कादर हाना, कर्मात्मा कुछ जीवों भी
 संभव है, परन्तु संसार-मूलक मन्त्र हो वर भी कादरला,
 वग मुगमें श्रद्धा वि शीर शीरला वरला वरला
 पुराण ही हाने हैं।

यौगिक गणना, अथवा कम कमर और
को हुए फ्लोका इन बाहर बाहर प्रयोग करने
योग्य है।



गणनाकी जगहों के बाहर विचार न करना।
यदि विचार बाहर रहे तो वह अकार्य-
योग्य है।



अकार्य-योग्य विचारों को अकार्य-
योग्य ठहराने के लिए अर्थ, यही अर्थ-
योग्यता है।



अगर अर्थ-योग्यता हो तो उसे देखते हुए
अधिक कामों में विचार नहीं होगी

और उग दुष्टों को दूर करेगी इन्हीं अर्थ-
योग्यता ही नहीं होगी।

जा ईश्वरेच्छा होगी, तो हागा ।

मनुष्यके लिए कथल प्रयत्न करना सुजित है ।
और उसीसे अपने प्रारम्भम जो होगा वह मिला
करेगा ।

अतः मान संकल्प-विकल्प नही करना ।

*

कठिना कावलाय आराधो योग्य नहीं है,
उपाराध आराधो योग्य नहीं है, मगनद् भजनाथ
या आम्नात्म्याण्यथ यदि उसका प्रयोजन हो तो
जीवने उग गुणवी चयोपशमताका फल है ।

*

निष्ठ विगते उपशम-गुण प्रगल् नहीं हुआ, निवेक
पेश न हुआ या समाधि न हुए उग विद्यामें मन्त्र
जीवने आप्रह करना ठीक नहीं है ।

मुकुन्दु जीवको इस कालमें ससारकी प्रतिकूल दशाएँ प्राप्त होना यह उसके लिए ससार पर होनेके बराबर है।

अनंत कालसे जिस ससारका अम्यास हुआ है उस स्वरूपसे सोचनेका प्रसंग प्रतिकूल अनाद्योम विशेष होता है यह बात निश्चितरूपसे मानने योग्य है।

*

ध्यातृद्वारिक प्रसंगाकी नित्य चित्र-विचित्रता है। फलन कल्पनासे अनन्त सुख और कल्पनासे दुःख ऐसी उनकी स्थिति है। अनुकूल कल्पनासे व अनुकूल लगने हैं और प्रतिकूल कल्पनासे व प्रतिकूल लगते हैं और ज्ञानी पुम्पोंने उन दोनों कल्पना करनेका निश्चय किया है।

विचारबन्धो शोक करना ठीक नहीं, ऐसा भी तीर्थंकर कहते थे।

मूल रूपमें देगने पर अगर जायकी मुसल्लुता आयी हो ता उसका सकार-बन हररोज घन्ता रह ।

सकारमें धनति सगति घटे या न घटे, वह अनिबन ह, परन्तु जीवकी सकारक प्रति जो भवना है वह मन्द होती चने-प्रमथ नाश हाने योग्य हो जाय ।

*

जा जीव कल्याण की आकाशा रक्वता है, और जिने प्रयत्न सपुष्पका निश्चय ह उसने लिए प्रथम भूनिष्ठम यह नीति मुख्य आधार है । जा जीव ऐसा मानता है कि उसे सपुष्पका निश्चय हुआ है परन्तु अगर कही हुई नीतिको प्रवन्ता अगर उसमें नही है, और कल्याणकी याचना करता है या बात करता है, तो वह निश्चय मान सपुष्पको टगनेने ही बराबर है ।

जा सुन्दर जीव यह देख व्यवहारम रहते हैं, उन्हें पहले तो आत्मनाम अथ नैतिक मूल स्थापन करना चाहिए नहीं जो उद्देश्य आदि सिद्ध होते हैं ।

द्रव्य आदि उत्पन्न करना इत्यादि व्यवहारोमें सलापग व्यापक रहना शक नाम नाति है । इस नीतिको त्यजनेमें प्रण चने कर ऐसी दशाको प्राप्त कर लं तभी त्याग-वैराग्य अथ रूपमें प्राप्त होते हैं उस जीवको ही सुन्दरके बचनोंका और जागृमका अद्भुत समग्र, महत्त्व और रहस्य समझमें आता है और सब कृत्या निबन्धस प्रवृत्ति करें ऐसा माम स्पष्ट सिद्ध होत है ।

संसारका स्वरूप काराग्रह है-आत्माका एका
बार बार श्रौं प्रतिक्षण त्या कर, यह मुमुक्षुका
मुख्य लक्षण है।

*

शनी पुण्यकी जा गण है वह म्भ्रमप्रभे
भागमें आइ प्रतिषेध समान है।

*

पानी स्वभाव ही शीत है वा भी उस धिरी
सहजम रायकर, नीचे यदि आग जलनी रगे तो,
उपकी इच्छा न होने पर भी वह पानी उष्ण बनता है
उसी तरह यह व्यवशाय भी, समाधिसे शीट ऐसे
पुरुषके प्रति उष्णताका कारण बनता है।

वीतरागका कहा हुआ परम शान्त-समय धम पूरा
 क्य है, एसा निश्चय रचना। जीव अधिकारी न होनेसे
 तथा सपुत्रका योग नहीं होनेसे यह समझमें नहीं
 आता तथाकि इसके समान जीवकी सखार-राग
 मिगनेका और कोई पुण हितकारी शोध नहीं है
 ऐसा बार बार चिन्तन करना।

यह परम तत्व है, उसका भुभ रण ही निश्चय
 रह यह यथाय स्वरूप मेरे हृदयमें प्रकाश करे और
 बन्ध-मरण आदि बाधनकी अत्यन्त निवृत्ति हो,
 निवृत्ति हो।

वह वहाँ इस संज्ञा के अन्तर्गत आया है, मगर प्रारंभिक धारणा किये हैं, वह वहाँ उस प्रकार के अतिमानस चला है जिस अस्मिन्तर्गत निरुत्त किये बिना उन देहोंके और देहके मध्यम आश्रय रूप प्राणियोंके इस जीवन त्याग किया है, अर्थात् अभी तक जन्म-मरणके उस भवकी दूर नहीं किया है, और वे सब पूर्वकी सजाएँ ज्यों-ज्यों इस जीवन अस्मिन्तर्गत चली आ रही हैं। यही इस सम्बन्ध लोककी अभिरक्षण-धियाका हलु कहा है।

जिन्हें स्वप्नमें भी ससारसुखकी इच्छा नहीं रही, और जिन्हें ससारका स्वरूप सपुण निःसारभूत लगा हे ऐसे ज्ञानी पुण्य भी आत्मावस्थाको बरम्बार सम्हाल सम्हाल कर, जो उन्मत्त हो उस प्रारब्ध का वेदन करते हैं, परन्तु आत्मावस्थामें प्रमाण नहीं होने देते। प्रमादका अवकाश होनेके कारण जिस ससार से ज्ञानी का भी किसी अशम व्यामोह होनेका सम्भव बताया है, उस ससारमें रह कर साधारण जीव अपना व्यवसाय लौकिक भावसे करते हुए आत्महित करना चाहे यह अशक्य-सा कार्य है, क्योंकि लौकिक भावसे कारण जहाँ आत्माको निवृत्ति नहीं होती, वहाँ और किसी संश्लेषित हित-विचार हाता सम्भव नहीं है।

असहिवर लिए सुगम बना प्रबल और कोई
 निमित्त सिगाइ नहीं देता परन्तु जा जीव लक्षिक भावने
 अवकाश ग्रहण नहीं करता, उसे वह सुखंग भी प्राय
 निष्फल जाता है और यदि सुखंग थोड़ा फलदायी हुआ
 हो वा भी, लाक्षायेस अधिसाधिक रहता हो वा वह
 फल निष्फल होनेमें देर नहीं लगती ।

विचारवान जीवका यह अग्रश्य कर्नय है कि चाहे किसी तरह परभावके परिचित कायसे दूर रहना—निवृत्त होना । विचारवान जीवको प्रायः यही बुद्धि रहती है तथापि किसी प्रारब्धके वश परभावका परिचय प्रबलतासे उदय हो, उस समय निजपत्की बुद्धिमें स्थिर रहना विक्र है ऐसा मानकर सदा निवृत्त होनेकी बुद्धिकी विशेष मानना करते रहना चाहिए ऐसा महान पुरुषपति कहा है ।

*

आ धम ससारको परिधीण करानेमें सबसे उत्तम हो, और निजम्बभावम स्थिति करानेमें यल्लवान ही, वही धम उत्तम और वही बन्धान है ।

श्रीमद् राजचन्द्र

—यचनामृत—

कर विचार तो पाम

भाग २

*

शुद्ध, बुद्ध, चैतन्यधन,
स्वयज्योति सुगन्धाम,

घोर कहूँ मैं विठना ?
कर विचार तो पाम ।

शत्रु या मित्र के प्रति रह समदर्शिता,
मान-अपमान में भी वही स्वभाव रह,
जीवन या मरण में भी न्यून-अधिक भाव न रहे,
जन्म या मौत में भी उद्वेग स्वभाव रह,
ऐसा अपूर्व अवसर कब आएगा !

राग, द्वेष और अज्ञान ही बमोंकी मुख्य गोंड है,
 जिससे उभरी निवृत्ति ही बही मानक माग है ।

मुमुक्षु जीवको अथन् विचारवान् जीवका इत्थं एव
रमे अज्ञानने विद्याम और काइ भव नही है ।

एक अज्ञानकी निवृत्ति इच्छा रागना, एव एक
इच्छाके विनाम विचारवान् जीवको अथ इच्छा न हा ।

विचारवानके विस्तार यह विचार निश्चयस्वरूप रहा करता है कि—संसार काराग्रह है, समस्त लोक दुःख का कारण पीडित है, मय य कारण आमुल-व्यामुल है और राम-द्वेषके प्राप्त फलमे प्रज्वलित है ।

जनकी प्राप्तिम कुठ अतराय है इसलिए काराग्रह रूप संसार मुझे मयका हतु है और लोक-भग करी योग्य नहीं है यही एक मय विचारवानको उचित है ।

सब जीव आत्मरूपसे सम-स्वभावी हैं। दूसरे पन्थायस यन्ि जीव निज बुद्धि करे तो परिभ्रमण दशाको पाता है और यन्ि निजमें निज-बुद्धि करे तो परिभ्रमण दशा टलती है।

*

उपाजित धार-र यन्ि बिना भाग ही नष्ट हा तो फिर सभी भाग मिष्या ही भिद्य हों।

*

श्री जिन आत्मपरिणामकी स्वस्थताको समाधि और आत्मपरिणामकी अस्वस्थताको असमाधि कहते हैं।

अस्यस्थ कायकी प्रवृत्ति करना और आत्मपरिणाम स्वयं रचना ऐसी विषय प्रवृत्ति भी तीव्र कर जैसे शर्मासे हाना कटिन् करी है, ता फिर अच जीवसे यह बात संभवित होना कटिन् हो इत्यम आश्चर्य नहा है ।

*

त्रिवनी संसारमें सापरिणति मानी बाय उठनी ही आत्मज्ञानकी न्यूनता भी तीव्र करने करी है ।

•

भी जिन द्वारा कहे गये सर पगथने मत्र एक आत्माको प्रकट करनके काम्ने है ।

मारुतगमें प्रवृत्तिके लिए दो याग्य हैं
 एक आमगन्नी और
 दूसरा आश्वगन्नीका आश्वगन्नी
 उमा भी त्रिन मन्त्राने कहा है ।

*

शनी पुष्टको सहाय भवने से अश्वका प्रतिभष
 होता है और क बार ठा परमाणु टि मिन्कर मंगाराय
 टि हा जाती है । शनीर प्रति एकी टि हाने पर
 पुन मुम्भ्राधिता पाना कठिन हुआ है ।

*

ऐसे बाह्य आन्दरकी तनिफ भी इच्छा न करना कि
 तिससे शुद्ध व्यग्रहार या परमायको हानि पहुँचे ।

बढ़ उठ सब प्रकारके विपम स्थानकामे समृद्धि न
 हो तब तक यथाथ आत्मज्ञान नहीं कहा जा सकता ।

*

शनी पुरुषके वचनछ दिते हए आशय हो उन
 सब भाषन सुलभ हो जाय, एसा अमर निधय
 उपरुपनि किया है ।

*

जिस प्रारम्भको भोग बिना श्री(कोई उपाय नहीं है,
 वह प्रारम्भ शनीको भी भोगना पड़ता है । शनी अठ
 तक आत्मज्ञानको त्यजना नहीं चाहता, यही एक शनीमें
 हास्य है ।

अगर य क्लेशम्प आत्म-परिमद्वय कायमें रहते हुए यदि यह जीव उदा भी निम्न या अजागृत रहे तो बहुत बर्षोंका उगभित बैराग्य भी निष्फळ हो जाय, एसी वशा ही आती है ।

इस बातका हर काय, हर क्षण और हर प्रसंगमें लक्ष्यमें रखे बिना मुमुक्षु जीवकी मुमुक्षुता रहनी दुर्लभ है और एसी ग्राहका वेदन किय बिना मुमुक्षुताका भी सम्भव नहीं है ।

बस पाम्चपत्ती साच साच कर निरुत्त करना यह
 छूटनेका एक मग है जीव जितना इध बढ़ने सोचंगा
 उतना ही शनापुरुषक मागने समझनेका समय समीर
 प्राप्त होगा ।

*

कनात्त संसार मयु आरि मयस अशरण है, बह
 शरणका हतु हो ऐसी क्यना करना कश्चन मृगत्रक
 बैश है । विचार कर कर के भीतार्थेकर जंशने भी
 लसे निरुत्त होना, छूटना यही उगाय शोभा है ।

*

अय पनाथक ओ कुठ विचार करना है यह
 जीवके माथके हतु करना है, अय पदाथके शनक निर
 नहीं ।

आत्म-परिणामही स्वस्थानको भी तीर्थकर 'समाधि' कहते हैं ।

आत्म-परिणामही सम्यग्दृष्टिको भी तीर्थकर 'असमाधि' कहते हैं ।

आत्म-परिणामही सद्ब्रह्म-स्वप्नमे परिणति हो, उस भी तीर्थकर 'धम' कहते हैं ।

आत्म-परिणामही कोई भी चक्र परिणति हो उसे भी तीर्थकर 'कम' कहते हैं ।

किसी भी जीवको विनाशी देहकी प्राप्ति हुई हो,
 ऐसा दग्ग नहीं, जाना नहीं, तथा समर्पित भी नहीं है,
 और मृत्युका आना तो अक्षय्य है,

ऐसा प्रत्यक्ष नि संशय अनुभव है;

फिर भी यह जीव उस बतको पुन पुन भूल जाता है,
 यह बड़ा आश्चर्य है।

*

जिस सर्वज्ञ बीतरागमें अनन्त सिद्धियों प्राप्त हुई थी,
 उस बीतरागने भी इस देहको अनित्य-भावी देगा है,
 तो फिर अय जीव किस प्रयोगमें देहको निच
 (अनिनागी) कर सकेगा ?

आरम-परिग्रहका अल्प करनेसे अ-सत्प्रसंग का बल कम होता है

सत्संगने आश्रयसे असत्संगका बल घटता है

अ-सत्संगका बन् बन्नासे आत्मविचार करनेका अवकाश मिलता है

आत्मविचार होनेसे आत्मज्ञान होता है

और आत्मज्ञानसे निजस्वभावस्वरूप, सब क्लेशों और सब दुःखोंसे मुक्त ऐसा मोक्ष होता है, यह बात निःसुल्लभ्य है।

जो जीव मोहनिद्रामें सोये हुए हैं वे अ-मुनि हैं मुनि तो निरंतर आत्मविचारसे जागृत रहते हैं। प्रमादीको उपश्रुं भय है, अगमार्दाको किसी तरह भय नहा है।

*

सब पदार्थोंका स्वल्प जाननेका हेतु एक मात्र आत्मज्ञान प्राप्त करना ही है। अगर आत्मज्ञान नहीं हुआ तो सब पदार्थोंका ज्ञान निष्फल है।

*

अथ परिणामम् (जीवकी) निवृत्ती तादात्म्यवृत्ति है, उतना ही मोड दूर है।

अगर कोई आत्मत्याग बन सका तो इस मनुष्य-
 र्द्ध-धारणका मूल्य किसी तरह भी नहीं हो सकता ।

*

श्री जिन भगवान् जैसे जन्म-त्यागी भी जिसे
 छोड़कर चल गिये ऐसे मयके हतुम्प उपाधियागकी
 निवृत्ति करते वरत यत्ति यह पामर तीन काज व्यनीत
 करंगा तो अभय होगा ।

*

आत्मपरिणामने जितना अय पदाथक तादात्म्य-
 अथास छोड़ा वाय उसे श्री जिन भगवानने त्याग कहा है ।

शानी पुण्यके चरणोंमें मन स्थिति किसे श्री
मक्तिमान विद्य नहीं होना ।

शानी पुण्यके चरणोंमें मन स्थाना रहते नो इटिन लगता
 है परतु वचनकी अपूर्वतास, न्य वचन पर निवर
 करनेमें तथा शानीके प्रति अपूर्व दाम देसने, मनका
 स्थापित होना सुलभ बनता है ।

उपाधि की जाय, फिर भी वचन अग्रग दशा बनी रहे, यह हाना गति-वर्तिन है और उपाधि करते एव आत्मपरिणाम चञ्चल न हो, यह बनना असम्भित सा है।

*

जन्म, जरा, मरण आदि दुःखानि समस्त मसार अशरण्य है। जिसने सब तरहसे उग्र मसारकी आस्था छोड़ी है, उसीने आत्मस्वमायको पाया है और (नही) निभय हुआ है।

*

जैसा निज स्वरूप है वैसा सपूर्ण प्रकाशित हो वहाँ तक निज स्वरूप निदिध्यात्ममें स्थिर रहने लिए शानीपुरुषने वचन आधारभूत हैं।

† जिस तरह शरीरसे बन्ध अलग है, वैसे ही आत्मासे शरीर अलग है, ऐसा जिन पुरुषोंने दग्ना है य पुरुष धर ह ।

*

दूसरेकी दम्नु अपनेसे ग्रहण हो ग- हा, और जब यह मालूम हा कि यह दूसरेकी है, तब उम दे देनेका ही काम महापुरुष करते ह ।

*

जगतके सब पदार्थोंकी अपेक्षा जिस पर सर्वोत्तम प्रीति है, ऐसी यह देह भी जब दुःखका हेतु है, तो फिर अय पदार्थमें सुगन्धे हतुकी क्या कल्पना करना ?

यह कोद नियम नहीं है कि ज्ञानी निधन हा या धनवान हो, या अज्ञाना निधन हो या धनवान हो ।

*

पूर्वनिर्गन्त शुभअशुभ कर्मक अगुगार टोनाकि उदय रहता ह । ज्ञानी उदयम सम रहता है, अज्ञानीको ह्य-विपाद होता है ।

*

विचारवानको देह छूटनेकी शक्त ह्ये-विपाद करना उचित नहीं । आत्मपरिणामकी विभव दशा ही हानि और वही सुरय मरण है । स्वभावसमुग्गता तथा उसकी हा इच्छा भी उग ह्य-विपादको दूर करती है ।

सहज स्वरूपमें जीवकी स्थिति हा उस भा वीतराम
'मोक्ष' कहते हैं ।

*

सर्वभावमें अमृगता होना, यह सब साधनाम दुःख
से दुःख साधन है और उसका निराश्रयतास छिड़
हाना अथवा दुःख है—यह विचारकर भी सीध करने
सुखगको उसका आधार कहा है कि त्रिष सुसंगत
योगमें जीवकी एसी सहज स्वरूपभूत अमृगता उत्पन्न
होती है ।

अपने दोरोंको प्रतिक्षण, प्रत्येक कायमें और प्रत्येक प्रसंगमें तीव्रण उपयागपूर्वक देखना और देखकर उनका क्षय करना।

*

ससंगके लिए यदि देहत्याग करनेका अवसर आता है तो उसका भी स्वीकार करना, परन्तु उसमें किसी पदार्थमें विशेष मक्ति-स्नेह होने देना योग्य नहीं।

*

ससंगकी अर्थात् सत्पुरुषकी पहचान होने पर भी यदि वह योग विरत न रहता हो तो ससंगसे प्राप्त हुए उपदेशका प्रत्यक्ष सत्पुरुषसम मानकर उसका विचार तथा आराधन करना कि जिस आराधनासे जीवनकी अपूर्व प्राप्ति सम्भव उत्पन्न होता है।

पीसो सबसे मुख्य और सबसे श्रवण केसा निश्रय
 रगना चाहिए कि मुने वो कुल करना है, उह आत्माने
कल्याण्य ही उस ही करना है।

*

मिप्या प्रवृत्तिमें तन्त्रम्य न हो यह शानका ल्पण
 है और निय-प्रति मिप्या प्रवृत्ति परिचीण्य हारी रहे
 यही सत्यज्ञानकी प्रतीति फट ह।

*

सत्यमगप और सद्यम्बका लाम चादनेशल म्मुनु
 आका भग्ग-परिमह और एव-स्वाणिका प्रन्विद
 सक्षिप्त करना उचित है।

तब तक अथवा दोष विचार कर उन्हें कम करौकी प्रवृत्ति न कर सक तब तक सत्सुम्पने कहे हुए भागका परिणाम पाना कठिन है। इस बात पर सुसुनु जीवकी खास विचार करना योग्य है।

*

सर्व प्रतिबन्धोन्मुक्तं रूपं बिना सर्व दुःखासं मुक्तं
हाना सम्भव नही।

*

अमृतं विषं ब्रूयते परकथा तथा परशक्तिर्न महा
करना है उद्यमे रह कर स्थिरता कैसे प्राप्त हो।

निमित्तमे जिसे हृप होता है,
 निमित्तमे जिसे शाक होता है,
 निमित्त पाकर जिमे इन्द्रियजन्य विपर्योकी ओर आकर्षण
 होता है,
 निमित्त पाकर जिग इन्द्रियान् प्रतिफल प्रकारमें रूप
 होता है,
 निमित्त पाकर जिसे उत्कृष्ट^१ आता है
 निमित्त पाकर जिसे कपाय उत्पन्न होते हैं,
 ऐसे पाँवको यथाशक्ति उन सब निमित्तपासी जीवांका
 सग ल्यचना चादिण और नियमप्रति मत्संग करना उचित है।

मत्र नीचोंको अग्रिय होने पर भी जिस दुःगका अनुभव करना पड़ता है वह दुःख संकारण होना चाहिए इस भूमिकास विचारवादीकी विचारभेदी मुख्यतया उन्नि होती है और उस परसे प्रमत्त आत्मा, कम, फलार्क, मोक्ष याि मायोका स्वरूप सिद्ध हुआ हो, उष्ण लगता है।

*

ज्या ज्या विचारी गुढि और स्थिरा होती जाती है
ज्या त्यो शर्नाक वचनाका विचार यथामान्य हा सकता है।

*

काम्य शक्तिक पन् भी शान्तिधरता होना ही है,
उसा वातरान पुग्गा कहा है।

ग्या हुआ एक जग भी धार्य नहीं आता, और वह अमृत्य है, ता फिर समस्त आयुष्य-स्थिति की तो बत ही क्या !

*

आत्मस्वल्पको वैशा है वैशा ही जाना, उसका नाम है समाना, इससे अय विस्तरहित अंशग हुआ इसका नाम समन है, वस्तुतः दोनों एक ही हैं।

*

जो जो समने उहोने मेरा-तेरा आदि अहंता-ममताका समन किया क्योंकि कादमी निब-स्वभाव वैशा देखा नहीं। और निब-स्वभाव ता अविच्य, अयाबाधस्वल्प वैकल्य चारा ही देखा इसलिये उसीमें समा गये।

मुमुक्षु जीवनको आत्महेतुभन सगरे सिवाय सब प्रकारके संगको कम करना चाहिए क्योंकि इसके बिना परमात्मका प्रकट होना कठिन है ।

*

संयोग (संबंध) समस्त दुर्गोका मूल है, जो ज्ञानी तीर्थकराने कहा है तथा समस्त ज्ञानी पुरुषाने देखा है ।

*

आत्माको समझनेके लिए शास्त्र उपकारी हैं और वे स्वच्छद्रहित पुरुषोंके लिए ही । यह हृदयमें रखकर सत्यास्त्रोंका विचार किया जाय तो उसे 'शास्त्रीय अग्निनिरेय' मानना योग्य नहीं है ।

जो चक्रवर्ती आदि का उत्कृष्ट सपत्तिके स्थान हैं
उन सबको अनित्य देखकर विचारवाला पुन्य उर्ह छोड़कर
चल पड़े हैं

अधरा प्रारंभके उत्पत्तिसे उनम रचना हुआ ता भी उसे
प्रारंभोत्पत्ति समझकर अमूर्द्धित और उदास भावसे रह ह
और त्यागका लक्ष्य रगा है ।

सब प्रकारक भयने रहाने स्थानरूप इस सुधारम
केवल एक वेदांग्य ही अमय है ।

*

स्वरवरूपमें रिधनिको 'परमाथ अयम' कहा है और
उस समयक कारणभूत ऐसे आय निमित्ताक महणको
यवहार अयम कहा है ।

*

असम ऐसा आत्मम्यरूप सन्तगके योगम सबसे
मुल्म रीतिने माशुम हाने योग्य है इसम शक्य नहीं ।

जितनी अपनी शक्ति का उस सब शक्तिम एक लक्ष्य रखकर, लौकिक अमिनिनेपका कम कर, 'बुछ भी शून आवरणरहितपना नहीं दाखता इस गिप जावका यह समझाकर कि 'यह का नेपल समताका अमिनान है,' जिस प्रकारमे शान, दशन और चारि-यमे जीव सतत जागृत रह यही करनेम वृत्तिको जादना और राव-दिन उमी विचाम रहता यही विचारया जीवका कवय है।

जब तक जीवकी तैयारुप आमज्ञान प्राप्त नहीं होला तब तक धर्षनकी आर्यतिक निवृत्ति नहीं होती, इसमें संशय नहा ।

*

उस आत्मशानकी प्राप्ति होने तक जीवकी मूर्तिमान आमज्ञान-स्वरुप ऐसे सद्गुरुदेवकी निरंतर आश्रय ग्राह्य करने योग्य है इसमें संशय नहीं है । उस आश्रयकी विषाग हो तब तक आश्रय भावना निय करने योग्य है ।

*

सब कार्यामें कर्तव्य केन्द्र आमाथ ही है, मुमुक्षु जीवकी ऐसी सभावना निय करना योग्य है ।

वर विचार ठो पाम

मृ और आन सब प्राणियों, सब जीवों, सब
इतों और सब वस्तुओंका निम्नर मिय है फिर भी ये
दुःख और स्नेह मोगने ह, इसका क्या कारण होगा
बहर !

अन और उभरे द्वारा निन्दगीता हीन उपयोग ।
(म) हीन उपयोगी रोकनेकी हरेक प्राणीकी इच्छा
होनी चाहिये ।

इस जीवको देहका समर्थ होकर यदि मृत्यु न होता तो इस सकारके किताब अथवा उसकी वृत्तिकी लम्बीका प्रचार न होया ।

*

दुल्भ एसी मनुष्यदेह भी पूर्वकालमें अनन्त धार प्राप्त हुए फिर भी कुछ भी उपलब्ध नहीं हुए ।

*

इस मनुष्यदेहकी सामग्री है कि जिस मनुष्य देहमें इस-जीवो-शरीर-पुरुषको पहचाना तथा उस महामाग्यता आश्रय लिया कि जिस पुण्यके आश्रयमें अनेक प्रकारके भिक्षा आगह आदि मद हुए व पुरुषके आश्रयमें यह देह नष्ट जाय सही साधक है

जिसमें जन्म-मरण-मरण आदि को नष्ट करने का
 आत्मज्ञान विद्यमान है उस पुण्यका आशय ही नीचता
 जन्म-मरण-मरण आदिका नाश कर सकता है क्योंकि
 वही यथामुक्ता उपाय है।

*

जिस आशयको पाकर जीव इसी मग्न या मग्न
 अरूप बालम भी निजस्वरूपमें स्थिति कर मग्न रूप
 आशयपूर्वक देह श्रुते, वही जन्म साधक है।

*

श्री सन्तुम्नो कहा है एम निग्रथ मग्न एत दा
 आशय रह।

म देहादि स्वरूप नहीं हैं और देह क, मग्न आदि
 कोइ भी मेरा नहीं है म पुत्र वैश्य मग्न ~~मग्न~~
 ऐसा आमा हूँ-इस प्रकार आत्ममाया क जाने मग्न
 द्वेषका क्षय होता है।

त्रिगुणी मृत्युम मंत्री हा अथवा जो मृत्युमे छूटकर
 भग वा सवदा हा अथवा म मर्गा ही नहीं ऐसा
 त्रिगुणा निश्चय हा, वह मने ही मृत्यु साण ।

*

विचारवान पुरुष वा कवल्यन्शा प्राप्त हाने तक
मृत्युका स्या समीप समझकर प्रवृत्ति करत हैं ।

*

लोक-समुदाय काइ मना होनवाला नहीं है,
 अथवा स्तुति-निदाक प्रयनके लिए विचारवानका इस
 दहकी प्रवृत्ति कत्रय नहीं है ।

लौकिक दृष्टि और अलौकिक (लोभात्तर) दृष्टिमें महान भेद है अथवा दोनों दृष्टियों परस्पर विरुद्ध स्वभाववाली हैं ।

लौकिक दृष्टिमें व्यवहार (साधारण कारणा) की मुख्यता होती है और अलौकिक दृष्टिमें परमायकी मुख्यता है । इसलिए अलौकिक दृष्टिको लौकिक दृष्टिके फलके साथ प्राय (बहुत करण) मिला देना योग्य नहीं ।

अतमुगत्रति रहित बहा त्रियान विधि-निषेधम
 दुद्र भी चारतपिन कल्याण नहीं है। गच्छानि भदाकी
 निमानम, त्रियान प्रकारके विरल्ल्याहो सिद्ध करनम
 आत्माका आवरण करन चरान है।

~

अनेकविध माग भी उभयक एकान्त एस निजपदकी
 प्राप्ति करानेके सिवाय और किछा हुनुसे उपकारक
 नहीं है।

बैत और दूसरे सब मार्गमें (मध्यमार्गमें) प्रायः मनुष्य देहका लिंग महत्त्व बताया है, यानी मोक्ष-साधनका कारणरूप होनेमें उसे चिन्तामणि समान कहा है, वह सच है।

परन्तु यदि उससे मोक्षकी साधना की हा, तभी उक्त यह महत्त्व है याना वास्तविक दृष्टिसे उक्तकी हीनता पुरुष देह विवर्ती भी नहीं दी जाती।

*

शुद्धात्मा अन्तर्में चञ्चेद्य विम्वका इत् निश्चय रहता है और वा उक्त निश्चयकी आराधना करता है, उसे वा ज्ञान मन्व्यकरिणी होता है, यह बात ज्ञानकी ईश्वर शक्त में रहने योग्य है।

देहके लिए अनवरत आत्माको गलाया है। जा देह
आत्माने लिए गलायी जायगी, उस देहसे आम विचार
जन्म लेने योग्य है ऐसा मानकर, सब देहार्थोक्ती कल्पना
छोडकर, एक मात्र आत्माधर्म उसका उपयोग करना है,
ऐसा निश्चय मुमुक्षु जीवको अवश्य करना चाहिए।

*

जो ज्ञान महानिजताका दंतु होता है, वह ज्ञान
अनधिकारी जीवने हाथमें जासे प्राय उसे अहितकारी
होकर फलता है।

*

परिमह आदिकी प्राप्ति काम ऐसे हैं कि वे प्राय
आत्मकरुणाका अनसर ही प्राप्त नहीं होत देते।

जब तक यह जीव लोकदृष्टिका त्याग न करे, और उभेले अवृत्ति छूट न जाय तब तक ज्ञानीकी दृष्टिका वास्तविक महारम्य लक्षमें नहीं आ सकता इसमें शक्य नहीं।

*

ज्ञानियोंने मनुष्यभरको विनामणि रत्नने मन्त्र कहा है, इसका यदि विचार करा तो यह प्रयत्न ~~संभव~~ संभव है।

*

देहायमें ही यदि यह ~~नियम~~ नियम ~~संभव~~ संभव हो तो एक पूटी कोड़ीकी ~~किसी~~ ~~नहीं~~ ~~है~~, ~~एक~~ ~~नि~~ ~~मध्य~~ ~~मालूम~~ ~~होता~~ ~~है~~।

मुमुक्षु जीव लैतिक कारणों अधिक हर्ष-विषद नहीं करता ।

*

गर्भाविका आत्मी प्रार्थि पूर्णते उपार्जित शुभ-अशुभ कर्मों अन्तसार होगी ऐसा विचारकर मुमुक्षु जीवका मात्र निमित्तरूप प्रयत्न करना उचित है, परंतु भयाकुल हाँस बिहा या चायका त्याग करना उचित नहीं, क्योंकि यह तो केवल व्यामोह है जो शान करने योग्य है ।

*

प्रति शुभ-अशुभ प्रारंभके अनुसर होती है, प्रयत्न (पुरुषार्थ) व्यवहारिक निमित्त है इसलिए उभे करना उचित है परंतु चिंता तो केवल आत्मसुख-रोधक है ।

लौकिक दृष्टिमें जो जो बातें या वस्तुएँ बहप्यनकी मानी जाती हैं वे सब बातें या वस्तुएँ—सोमयुक्त गृह आदिका आरम्भ, अलंकार आदिवा परिग्रह, लोकदृष्टि की विवशता, लोकमान्य धर्मभङ्गास्तु—अथवा चहरका प्रदूषण है ऐसा यथाथ समझ बिना, मानते हो उन वृत्तिका लक्ष्य नहीं होता। आरम्भमें उन बातों और वस्तुओंके प्रति चहर-दृष्टि आना कठिन समझकर कायर न होने हुए पुण्याथ करना उचित है।

त्रियमभावे निमित्तके बलवानरूपमे प्राप्त होने पर भी जो शनीपुरुष त्रियम उपयोगस रहे हं, रहते हैं और अभिष्यमें रहगे उन सबका गरम्बार नमस्कार है।

*

यदि सफलैवाका मार्ग समझमें आ जाय तो इस मनुष्य देहका एत समय भी सरीतृष् चिंतामणि है, इसमें संशय नहीं।

*

राम-द्वेषके प्रत्यक्ष बलवान निमित्तोंक प्राप्त होने पर भी जिसका आत्ममान किंचित भी क्षाम नहीं पाता, उस शनीक जानका विचार करनेसे भी महात्रिन्दर-हानी है, इसमें संशय नहीं।

'शानका फल विरनि है बीतरामका यह वचन सब मुमुक्षुकाको नित्य स्मरणमें रखने योग्य है।

*

द्विष पक्षमे, समनमे और विचारसे आत्मा विभाषमे, विभाषने कार्यमे और विभावके पारणामासे उगशीन न हुआ, विभावका त्यागी न हुआ, विभावके कार्याका और विभावक पत्रका त्यागी न हुआ, वह पत्रा, वह समभन्ता और वह विचारना अज्ञान है।

विचारवृत्ति साथ त्यागवृत्तिको उत्पन्न करना यही विचार सफ है-यह कहोका ही शानका परमाव है।

एकाकी विचारा बली रमयानमा,
 बली परतमा-बाप मिह मयोग ला
 अगल आम्ब, न मन्या नर्त्ता शक्ति,
 परम मिशना जस पाप्या यम रः

अपुन अदपर अवा कदा अर्त्त

मन्याने अकेल भनग कान दुष्ट, और नद
 बाप तथा मिहका निग्य हान पर अतोउ-मिह उ
 नस रहू आर मनमें क्षीम न गेकर एता रुद लन
 म्ने छिपी परम मिशका सनामम दुश्रा है उम् उ
 अदपर कद प्रावद हान !

कर विचार तो पाम

१०

जहाँ उपाय नहीं, वहाँ खेद करना योग्य नहीं है।

*

इस जगतम प्राणीमानकी चक्ष या अव्यक्त इच्छा
भी यही होती है कि मुझे किसी तरह दुःख न हो
और सर्वथा सुख हो। प्रयत्न भी इसीके लिए है
फिर भी वह दुःख क्या नहीं मित्रता !

*

सर्वत भवसुख उपयोगम स्थिति यही निप्रथका
परम धम है।

परमयोगा पसे श्री ज्ञानार्थ रत्न किं
 देहको न रत्न सके, उत रत्न न किं वही
 रही है कि अब तक उमर नर ए, उ अन्य नर
नीव असुग और निमोह क न, उच्य अन्त-
 स्वस्य ऐमा निवस्यस्य दन्त अर न्व अवा ने
 अनन हो वाप, तकि किं न-ए-हा परा न
 रहे ।

इस देह द्वारा करने योग्य काय तो एक ही है कि किसीके प्रति राग या किसीके प्रति किंचित् भी द्वेष न रहे—सर्वत्र समदृशा रहे यही कल्याण का मुख्य निश्चय है।

*

जो काम सच्चे अतःकरणसे सत्पुरुषके वचनोंकी प्रहण करेगा वह सत्यको पाएगा इसमें कोई संशय नहीं और शरीरका निर्वाह आदि व्यवहार सबके अपने अपने प्रारंभके अनुसार ही प्राप्त होना योग्य है, इसलिए इस विषयमें भी कोई विकल्प रखना योग्य नहीं।

जो अत्रिय है, जो अकार है और जो अशरण रूप है वह इस जीवकी भीतिका कारण क्या होता है ? यह बात दिन-रात सोचने योग्य है ।

*

साकदृष्टि और शानीकी दृष्टिमें पश्चिम-पूर्व बिन्दना अंतर है । शानीकी दृष्टि प्रथम वा निरालंबन होनी है, वह रुचिका उत्पन्न नहीं करती, और जीवकी प्रकृतिसे भेदनी नहीं आती, इसलिए जीव उस दृष्टिमें रुचिवाला नहीं होता । परन्तु जिन जीवोंने परिग्रहका सहन करके थोड़े समय तक भी उस दृष्टिका आराधन किया है उन्होंने सब दुःखार्थ क्षयरूप निर्माणको पाया है-उसका उपाय पाया है ।

जिसने सत्कारके स्वरूपको स्पष्टरूपसे जाना है उसे इस सत्कारके पदाथकी प्राप्ति या अर्प्राप्ति होने पर हृष या शोक होना योग्य नहीं ।

*

जिस आरम्भ-परिमह पर विशेष श्रुति रहती है उस जीवम सत्पुरुषके दचनोंका या सत्शास्त्रका परिणामन हाना कर्त्तिन है ।

*

जैसे जैसे जगत्के सुगन्की स्पृहाम खेद उत्पन्न होता है, वैसे वैसे शानीका मार्ग स्पष्ट सिद्ध होता है ।

छापुसुयाका केमठ अठमुंय हानका मय ही छय
दु न्वाके छयका उषाय है परन्तु वह किछा किछा नीवकी
ही समझम आता है ।

महान पुण्यन योग्ये, सिद्ध मरिस, दैव तैराग्यसे
और सपुण्यक समागमम वह उषय धनन याग्य है ।

उसने समझनेका अन्तर कदा कदा मुख्य देह है
और वह भी अनियमित कालक मन्ने मन्ने है, उसमें
प्रमद हाता है यही खेद और अर्थ है ।

सत्समागम, सशास्त्र और सत्सत्कारम हृद निवास, ने आ मद्रा हानेनं बन्धान अन्तर्बन हैं । सत्समागमका याग हाना दुलम है तथापि मुमुक्षु जीवका उस योगकी तत्र जिगया रगमा और उसको प्राप्त करना योग्य है । उस योगके अभावमें तो जीवको अनदय ही सत्शास्त्ररूप विचारका अवठकन करके सदाचारकी जायति रगना योग्य है ।

*

परिणाम तो निष्का अमृत ही है, परन्तु प्रारम्भिक दशमें जो कालकृत् विपकी तरह व्याकुल कर देता है, ऐसे आ स्युष्का नमस्कार ही ।

जिस समय विषय-वश्याय आदि विशेष विकार उत्पन्न करके जायें, उस समय विचारवानका अपनी निर्भीषता देखकर अत्यन्त खेद होता है और वह अपनी (आत्माकी) बारम्बार निन्दा करता है। वह पुनः अपनी निरस्कारकी वृत्तिसे दण्डकर, फिरसे महान् पुत्र पाक चरित्र और वाक्याका आधार ग्रहण कर, आत्मार्थ शोध उत्पन्न कर, उन निषयाधिक विरुद्ध अयत्न हट करके उन्हें हटा न दे तब तक वह चैनसे नहीं बैठता, तथा भिष लेद करके ही नहीं रह जाता।

आत्मार्थी जीवन इसी वृत्तिका अलम्बन किया है और अतर्से उन्होंने इसीसे जय पायी है। यह बात सब ऋमुत्तुआका सुनगाम करके हृत्पन स्थिर करना योग्य है।

अवधानके लिए अविषममात्रन विना दूसरा काइ अधिकार हमका भी नहीं है।

*

जिस तरह मुसुलुता दृढ हो वैसा करो हार जानेका या निराश होनेका कोई कारण नहीं है। जीवको जब दुलम याम प्राप्त हुआ है तो फिर थोड़ा प्रमाद छाड़ देनेम घबराने या निराश हाने जैसा कुछ भी नहीं है।

*

सहृदये शास्त्र और वाक्योंके अभ्यासकी अपेक्षा, अगर जीव शरी पुरपाकी एक एक शास्त्र करे तो अनेक शुभवि ने प्राप्त हो।

दुःखभक्त लका प्रबुद्ध राज्य नच रहा है, फिर भी अद्भुत नियमों से संपुष्पही आशामें उचित लगकर आ पुण्य प्रकृति वीरसे सम्यक् ज्ञान, दर्शन और चारित्रिकी उपासना करना चाहते हैं उन्हें परम शान्तिका माग अब भी प्राप्त हो सकता है।

*

देहसे भिन्न स्व-पर-प्रकाशक परम न्याति-स्वरूप ऐसे इस आत्मामें निमग्न होओ। ह आचरनो! अंतमग्न होकर, स्थिर हाकर उस आत्मामें ही रही ना अनंत अपार आदका अनुभव करोगे।

जिसकी इद्रियाँ जपयसे ज्ञात हैं, उसे शीतल
आत्मस्तुत, आत्मकी प्रतीति कहोंसे हो !

*

“जहाँ सर्वोत्कृष्ट शुद्धि है वहाँ सर्वोत्कृष्ट सिद्धि है ।”
हे श्रायकतो ! तुम इस परम वाक्यका आभासे अनुसर
वरो ।

*

उद न करते हुए, शरवीरताको महत्त्व करन शीके
मभास चलनेसे माध-नगरी सुख ही है ।

सास्त जगतने नीब कुल्ल १ कुल्ल पाकर सुग्न प्राप्त करना चाहते हैं ।

महान चक्रवर्ती राजा भी अपने हुए वैभव और परिग्रहक सकल्पमें प्रयत्नशील रहता है और प्राप्त कर नेमें सुग्न मानता है ।

परन्तु अहो ! जानिये तो उससे उलगा ही सुग्नका माग निर्मित किया है कि निश्चित मान भी ग्रहण करना यही सुग्नका नाश है ।

जिसे कुछ प्रिय नहीं, जिसे कुछ अप्रिय नहीं
 जिसका कोई शत्रु नहीं, जिसका कोई मित्र नहीं, जो
 मान-अपमान, लाभ-अलाभ, हृष-शोक, बन्ध-मृत्यु
 आदि द्वंद्वोंका अभाव करके शुद्ध चैतन्यस्वरूपम स्थित
 हुए हैं, होते हैं और होंगे, उनका जति उत्कृष्ट परात्म
 सान्दाक्ष्य उत्पन्न करता है।

जैसा देहक साथ बल्लका संबध है, वैसा ही आत्माने साथ देहका संबध जिसने सही सही देगा है, ग्यानके साथ जैसा एगारका संबध है वैसा ही देहक साथ आत्माका संबध जिसने देखा है, अरुद-सुष्ट आत्माका जिसने अनुभव किया है उस महापुण्यका जीवन और मरण दोनो समान हैं ।

जिस अचित्य द्रव्यकी शुद्ध नैनय स्वरूप परम कान्ति प्रकट होकर उसे अचित्य करती है, वह अचित्य द्रव्य सहज स्वाभाविक निजस्वरूप है एसा निश्चय जिस परम कृपालु सपुष्पन प्रकाशित किया है उसका अपार उपकार है ।

*

अनन कालमें जो ज्ञान ससारका कारण होता था उस ज्ञानको एक समयमात्रमें जात्यंतर करके ससारकी निवृत्तिरूप जिसने बनाया उस कल्याणमूर्ति सम्यग्-दर्शनको नमस्कार हो ।

अपानसे श्रीर ह्य-स्वरूपक गति प्रमादस ज्ञानाको
कवन् गृत्युकी भान्ति ही ह ।

उस धान्तिका निवृत्त कर, शुद्ध कैतय निजअनुमान-
प्रमाणस्वरूपम परम जाग्रत होकर, शनी सुप्त निश्चय
रहता है । इसी स्वरूपने लभसे सब जीवकि प्रति-साध्यभाव
उत्पन्न होता है ।

*

जिसकी उत्पत्ति अथ किसी भी द्रव्यसे नहीं होती,
एत उच आत्माका नाश भी कहाँस हो ?

श्रीमन् अनन्त चतुष्स्थित महादत्ता और उग्र ब्रह्म-
धर्मका सर्व आभय करना चाहिए ।

त्रिसर्ग अन्य को काम्य नहीं है जेम अराक्त
और अरुप मनुष्यने भी उग्र आभयके बलसे परम
मुक्त हेतु ऐसे अद्भुत फलका पाया है, पाता है और
पाएगा । इसलिए निश्चय और आभय ही कर्तव्य है
अ-धीरजसे गद कर्तव्य नहीं है ।

मरा चित्त, मरी चित्तवृत्तियाँ इतनी शान्त हो जाओ
 कि कोई मृग भी इस शरीरका दम्पता ही रहे, भयभीत
 होकर भाग न जाय ।

*

मरी चित्तवृत्ति इतनी शान्त हो जाओ कि कोई
 वृद्ध मृग, जिसके सिरमें खुजली आ रही हो, इस
 शरीरका जड़ पदार्थ समझकर खुजली मिटानेके लिए
 अपना सिर इस शरीरमें धिसे ।

*

ह जीव ।—इस क्लेशरूप संसारमें निवृत्त हो,
 विवृत हो ।

गृहवासा जिग उभय रहता है, वह यदि किसी
 भा शुभयान्त्री प्राति रात्रि हा वा उमक मल
 एतुभूत एगं अमुक गगनरूपक रहना याग्य है। उग
 अमुक नियमम 'याय गगन आनीरिका आदि व्यवहार'
 इस पहल नियमरा याय करना गचित है।

*

यदि तुम स्विकता चाहत हो तो प्रिय वा अप्रिय
 वस्तुम न मोह करो, न राग करो, न द्वेष करो।

*

यह प्रवृत्ति-व्यवहार ऐसा है कि जिसमें वृत्ति
 यथाशान्त रचना असम्भव अथा है।

अहाँ सपुष्पने धननामन मुद्रा और सुकुच
 सुकुच चेतनाका जगनेगले पतित वृत्तिका निरुद्ध
 बाले, दशनमात्रसे मी निर्णय, अपुव स्वल्प
 स्वल्प प्रतीति, अप्रमत्त मयम, और पूरा
 स्वमने कारणभूत और अन्तम प्रकाश
 प्रकाश करके अनन्य अयाबाध स्वल्पने
 त्रिकाट अयुक्त रहा !

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

अनन अयाबाध मुक्ता एक अनय उपाय स्वल्पस्थ
हाना ही है। यही हितकारी उपाय शाना पुम्पन
देखा है।

*

मार्गीजनका रउक, बाधन श्रीर हितकारी ऐसा
का उपाय हो ता यह नीतरागका धम ही है।

*

समस्त सकारा जीव कमवग सातायसाहाके उपायका
अनुभव करते ही रहत हैं, उक्तम मुग्धतया ता असाताका
हा उदय अनुभवमें आता है।

लौकिक मनको छोड़कर, वाचनको त्यजकर, कल्पित विधि-नियमोंमें दूर रहकर जो जीव प्रकृत दर्शनकी आज्ञाका आराधन कर, तयाह्य उपदेशकी पाकर, तयाह्य आत्मायमें प्रवृत्ति करता है उसका आश्रय कल्याण है।

*

नियम-मति मुमुक्षुओंका धर्म है।

*

अज्ञादि कालसे चञ्चल ऐसे मनको स्थिर करना चाहिए। प्रथम वह अतीव विराष करे इसमें कोई आश्रय नहीं। उस मनको महात्माओंने क्रमशः स्थिर किया है, शान्त किया है-क्षय किया है-यह सबमुच आवश्यक है।

मनु-दण्डका मनु द मनुव मनु मनुव
 करगोहा मनुवने कन्विते मनुव मनुव
 मनुव मनुव-मनुवकर मनुव मनुव
 मनुव मनुव मनुव मनुव मनुव मनुव
 मनुव मनुव मनुव मनुव मनुव मनुव
 मनुव मनुव मनुव मनुव मनुव मनुव
 मनुव मनुव मनुव मनुव मनुव मनुव

सधाथरूपसे देखें तो शरीर ही वेदनाकी मूर्ति है। हर समय जीव उसके द्वारा वेदनाका ही अनुभव करता है। स्वचित् सदा और अधिकतर असादाका ही अनुभव करता है।

*

वा वेदना पूर्वकालम मुन्द बधनसे नीवने जौषी है, उम वेदनाउ उदय प्राप्त हानेपर उम अद्र, चद्र, नागद्र या त्रिनेत्र मी रोकनेको समथ नहीं, उसका उदय जीवको वेदन करना ही चाहिए।

अज्ञान-दृष्टिक जीव उसका वेदन खेदम करे, तो मी यह वेदना कुछ घटती नहीं, या टल जाती नहीं।

सत्य दृष्टिके नीव शान्त-भावसे (उसका) धन करे, तो यह वेदना धइ नहीं जाती किंवा यह नवीन संघका हनु नहीं होनी। इससे पूषकी बलवान निजरा होती है। आमाथीको यही कसप है।

“ मैं शरीर नहीं हूँ परन्तु उससे किन्तु शक्य आत्मा हूँ, तथा तित्य-शाश्वत हूँ । यह वेदना केवल पृथक्कर्मी है परन्तु वह मेरा स्वरूप नाश करनेकी समथ नहीं, अउ मुझे वेद नहीं करना चाहिये । ” -आमार्थीका ऐसा अनुपेक्षण होता है ।

चित्त वस्तु जिनमें प्राप्त होती है उस मणिको चित्तमणि कहा है वही यह मातृपदेह है कि जिस देहमें-यागम आधुनिक ऐसे सब दृष्टोक्त शय करीका चित्त किया ता वह पार पड़ता है ।

*

जिधना महात्म्य अभिव्य है ऐसा सुकर्मणी कल्प कृत प्राप्त होने पर भी यदि जीव दृष्टि बना रहे, ता इस जगत्तम यह ग्याहवों आश्रय ही है ।

*

उपशम ही जिस शाका मू है उस ज्ञानमें तीव्र्य वेदना परम निब्ररा मानने योग्य है ।

चरन्तीकी समस्त शक्तिमें भी जितका एक समयमात्र भी अधिक मूल्यमान है ऐसे इसे मनुष्यदेहकी और परमात्मा अनुकूल ऐसे योगकी प्राप्ति हुई फिर भी यदि जन्म-मरणसे रहित ऐसे परमपदका ध्यान नहीं रहा तो इस मनुष्यकी अधिष्ठित ऐसे आत्माको अनन्तवार विकार ही।

लोकसंज्ञा जिसकी निर्माणा प्रवर्णन है, वह किंग
 चाहे नैसी श्रीमत्तता, सत्ता या कुटुंब परिवार आदि
 योग्यता ही तो भी वह दुस्वरा ही हेतु है। इन्
 शान्ति जिस विदगीका प्रवर्णन है, वह विन्नी नई
 एकाकी, निधन और निर्मल हो तो भी पर काल
 स्थान है।

धममें लालिह बङ्गन, मान, महत्व आङ्की इच्छा धमर द्रोहरूप है ।

*

शरीका माग सुग्म है परंतु उसे पाना दुल्म है यह माग विकट नही, सीधा है परंतु उने पाना विकट है । पहलु रचना शरी चाहिए, उसे पहचननु चाहिए, उसकी प्रतीति भागी चाहिए, फिर उसने कचन पर भडा रखर नि सशय हा चलनसे माग सुग्म है ।

*

मार भकी सुतररिगामने वेदन करना-भोग लना-यह बडा पुरुपाथ है ।

सुखे लि नो ह ज्ञानपठे लिए हो,
 विद्वान् ज्ञानपठे, ज्ञान ह्यन्य भावे, यह
 प्राप्त हो। यह ज्ञानपठे है पन्तु वहाँ
 विचार हा संभव है।

हात्ती

रंतु
 शर
 वे

पुरुष, ज्ञानपठे, पर दूसरको यह नहीं
 द सकत, ह्यन्य भावे।

विचारमानकी पुद्गल तन्मयता-तान्मय भाव-नहा होता ।

जिसे तन्मयता हाती है उसे ही हय-शाक्तु हाना है ।
निमित्त जो है वह अपना काय किय बिना नहीं रहता ।

*

नीर जब विमान-परिणाम प्रवृत्ति करता है तब कम बाधता है और स्वभाव परिणाममें प्रवृत्ति करता है तब कम नहीं बाधता ।

*

(शक्ति) आत्मान परिणाम हाना, उसमें समा जाना, यहा अतवृत्ति है । पदाथकी तुच्छता लगी हो वा अन्त वृत्ति रहती है ।

पुण्यक द्रव्यकी संभाल रख तो भी वह कभी न कभी चला जायगा ही और जो हमारा नहीं है वह हमारा होनेवाला नहीं है, इसलिए लचारे हाँकर रीन बनना किस कामका ?

*

तृष्णावान् मनुष्य सदा भिन्तारी,
सन्तानी जीव सदा सुगी ।

*

“ भिष्यान्व ” अन्तमयी है,
“ परिमह ” बाधमयी है ।



द्विम द्वाय, एष, वा (त्रौ) मयमे सुम-दुम
 उदयम आनेका है उयमे हत्राणि भी परियन्त करनेगे
 काय नहीं हैं।

*

शुम कम्मे उदयक समय शत्रु मित्र इन बात है
 और अशुम कम्मे उदयके समय मित्र शत्रु इन बात
 है। सुम-दु गता सही कारण कम ही है।

*

रुधि विपये चले जाने पर कोई भी शाय, का^२
 भी अक्षर, काइ भी कथन, काई भी वचन, का^२ भी
 हमाग प्राय अहितका कारण नहीं होता।



